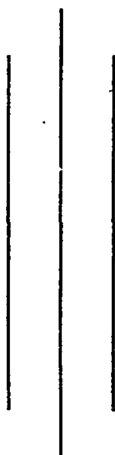
शान्ति-सम्बोध



सम्बोधक - शान्ति मुनि

पुस्तक : **शान्ति-सम्बोध -११**

सम्बोधक : **शान्ति मुनि**

संकलन-सम्पादन : श्रीमती कुसुम लता "काजल"

मूल्य : २३/५० रुपये

लेजर टाईपसेटिंग : फ्लोराइट कम्प्यूटर्स,
100, बड़ा बाजार, उदयपुर
(शशि प्रिन्टर्स, उदयपुर के लिए)

मुद्रक : शशि प्रिन्टर्स, उदयपुर के लिए
तायल आफॅसेट प्रिन्टिंग प्रेस, नई दिल्ली में मुद्रित

प्रकाशक : संस्कारक्रान्ति संस्थान,
529, हिरणमगरी, सेक्टर 4, उदयपुर

मन प्राणों का कण–कण

जिनकी ऊर्जा से

अनुप्राणित

है –

उन्हीं

समता–दिवाकर

आचार्य श्री

"नानेश"

के

चरणों

में

– लता 'काजल'

सम्पादकीय

जनकल्याणी जिनवाणी को परमोपयोगी एवं अधिकतम श्रेयकारी बनाने हेतु यह आवश्यक है कि विद्वद्जनों के मुखारविन्द से निकले प्रत्येक शब्द को हृदयंगम करके उस पर मनन किया जाए। परोपकारी महापुरुष तो सर्वजन हिताय की भावना से शास्त्रों का निचोड़ कर हमें नित्य प्रति अमृतरस का पान कराते ही हैं, किन्तु उस वाणी को उस समय सुनकर बाद में चिन्तन-मनन करने हेतु यदि उस अजस्रधारा का संकलन हो जाए तो भविष्य में समस्त जन समुदाय उससे लाभान्वित हो सकता है। महापुरुषों के वे सम्बोधन सुदूर क्षेत्रों का भी हित कर सकते हैं। इसी दृष्टिकोण से समय-समय पर श्रद्धेय गुरुदेव एवम् अन्य मुनिराजों के सम्बोधनों का संकलन-सम्पादन होता रहा है। इसी श्रृंखला में योगदान देने हेतु मेरे मानस में भी स्फुरणा जागृत हुई कि मुनिश्री जी के सम्बोधनों का एक संकलन तैयार किया जाए।

समतादर्शन प्रणेता आचार्य श्री नानेश के सुशिष्य पं. रत्न श्री शान्ति मुनिजी म. सा. की देशना द्वारा मेरे जैसी अनेक मुमुक्षु आत्माओं को सन्मार्ग मिला है। आप श्री के पाण्डित्य, सरस व्यावहारिकतापूर्ण ज्ञान तथा अद्भुत प्रस्तुतीकरण शैली की छाप आप श्री द्वारा प्रणीत साहित्य एवं उद्बोधनों द्वारा हृदय पर सीधा प्रभाव छोड़ती है।

मुनिश्री जी के ओजस्वी एवं सत्प्रेरणादायक सम्बोधनों की मौलिकता बनाए रखने का यद्यपि मैंने यथासम्भव प्रयास किया है, फिर भी नहीं जानती की इसमें कहाँ तक सफल हो सकी हूँ। इसका निर्णय तो जिज्ञासु धर्मबन्धु ही कर पायेंगे।

यद्यपि यह मेरा हास्यास्पद 'टिटिहरी प्रयत्न' ही है, तथापि अपने इस यत्किञ्चित् श्रीगणेशीय प्रयास को श्रद्धेय मुनिश्री जी के चरणों में समर्पित करती हुई मैं अपार आनन्द की अनुभूति कर रही हूँ।

यहाँ मैं यह भी स्पष्ट करना चाहूँगी कि प्रस्तुत कृति के सम्पादन में श्रद्धेय मुनिश्री जी के सहयोग-निर्देशन की अपेक्षा मेरी स्वयं की सृजन-शैली का ही स्वर प्रमुख रहा है, अतः किसी भी प्रकार की सैद्धान्तिक तथा साहित्यिक त्रुटि के लिए मेरी अल्पज्ञता को ही उत्तरदायी समझा जाए।

लता 'काजल'

एम.कॉम.

सम्पादकीय

जनकल्याणी जिनवाणी को परमोपयोगी एवं अधिकतम श्रेयकारी बनाने हेतु यह आवश्यक है कि विद्वद्‌जनों के मुखारविन्द से निकले प्रत्येक शब्द को हृदयंगम करके उस पर मनन किया जाए। परोपकारी महापुरुष तो सर्वजन हिताय की भावना से शास्त्रों का निचोड़ कर हमें नित्य प्रति अमृतरस का पान कराते ही हैं, किन्तु उस वाणी को उस समय सुनकर बाद में चिन्तन-मनन करने हेतु यदि उस अजस्रधारा का संकलन हो जाए तो भविष्य में समस्त जन समुदाय उससे लाभान्वित हो सकता है। महापुरुषों के वे सम्बोधन सुदूर क्षेत्रों का भी हित कर सकते हैं। इसी दृष्टिकोण से समय-समय पर श्रद्धेय गुरुदेव एवम् अन्य मुनिराजों के सम्बोधनों का संकलन-सम्पादन होता रहा है। इसी श्रृंखला में योगदान देने हेतु मेरे मानस में भी स्फुरणा जागृत हुई कि मुनिश्री जी के सम्बोधनों का एक संकलन तैयार किया जाए।

समतादर्शन प्रणेता आचार्य श्री नानेश के सुशिष्य पं. रत्न श्री शान्ति मुनिजी म. सा. की देशना द्वारा मेरे जैसी अनेक मुमुक्षु आत्माओं को सन्मार्ग मिला है। आप श्री के पाण्डित्य, सरस व्यावहारिकतापूर्ण ज्ञान तथा अद्‌भुत प्रस्तुतीकरण शैली की छाप आप श्री द्वारा प्रणीत साहित्य एवं उद्‌बोधनों द्वारा हृदय पर सीधा प्रभाव छोड़ती है।

मुनिश्री जी के ओजस्वी एवं सत्प्रेरणादायक सम्बोधनों की मौलिकता बनाए रखने का यद्यपि मैंने यथासम्भव प्रयास किया है, फिर भी नहीं जानती की इसमें कहाँ तक सफल हो सकी हूँ। इसका निर्णय तो जिज्ञासु धर्मबन्धु ही कर पायेंगे।

यद्यपि यह मेरा हास्यास्पद 'टिटिहरी प्रयत्न' ही है, तथापि अपने इस यत्किञ्चित् श्रीगणेशीय प्रयास को श्रद्धेय मुनिश्री जी के चरणों में समर्पित करती हुई मैं अपार आनन्द की अनुभूति कर रही हूँ।

यहाँ मैं यह भी स्पष्ट करना चाहूँगी कि प्रस्तुत कृति के सम्पादन में श्रद्धेय मुनिश्री जी के सहयोग-निर्देशन की अपेक्षा मेरी स्वयं की सृजन-शैली का ही स्वर प्रमुख रहा है, अतः किसी भी प्रकार की सैद्धान्तिक तथा साहित्यिक त्रुटि के लिए मेरी अल्पज्ञता को ही उत्तरदायी समझा जाए।

लता 'काजल'
एम.कॉम.

प्रकाशकीय

साहित्य हमारी सभ्यता एवम् संस्कृति को जीवन्त रखने का आधार है अथवा हम यों भी कह सकते हैं कि साहित्य के आधार पर ही हमारी सांस्कृतिक धरोहर टिकी रहती है। यही नहीं साहित्य समाज का ऐसा दर्पण है जिसमें समाज की यथार्थ छवि अंकित होती है।

हमारे समक्ष आज आगम, त्रिपिटक, वेद-उपनिषद आदि जो कुछ भी अध्यात्म ग्रन्थों की थाती उपलब्ध है वह साहित्य के द्वारा ही सुरक्षित रही है। हमारा इतिहास साहित्य के पृष्ठों पर ही अंकित होता है। हमें अपने अतीत से जोड़े रखने में हमारे ऐतिहासिक साहित्य का बहुत बड़ा योगदान है।

इस आधार पर हम यों भी कह सकते हैं कि हमारे अनागत को हमारा वर्तमान साहित्य जोड़े रखेगा। यही नहीं साहित्य हमें जीवन दर्शन का सम्यग् दिशा निर्देश करता है और इस रूप में समाज में सत्य, न्याय, प्रामाणिकता, प्रेम, स्नेह, मौहार्द, शालीनता आदि गुणों के विकास में भी साहित्य अपनी अहम् भूमिका निभाता है। इस दृष्टि से हम यह कह सकते हैं कि साहित्य हमारे जीवन की अनिवार्य आवश्यकता है उसके विना हमारी सभ्यता संस्कृति जीवित नहीं रह सकती है।

सत् साहित्य के वाचन, पठन-पाठन आदि की प्रवृत्ति प्रत्येक मानव को अपने जीवन में रखनी चाहिए जिससे जीवन का उजड़ा उपवन पुनः पल्लवित, पुष्पित होकर अपनी. सौरभमयी महक प्रदान कर सकें। सत् साहित्य अनुभवों से परिपूर्ण और प्रेरणाप्रद सुशिक्षाओं का कोष होता है जिसके द्वारा बड़ी सरलता और सहजता के साथ पढ़कर प्रत्येक पाठक लाभान्वित हो सकता है।

इसी दृष्टिकोण को समक्ष रखते हुए हमने "संस्कार क्रान्ति संस्थान" की स्थापना की और उसी के अन्तर्गत एक साहित्य प्रकाशन प्रकोष्ठ भी रखा गया। और यह ध्येय रखा गया कि जन-जीवन में उन्नत आदर्श संस्कारों की पुनः स्थापना हो, समाज में संस्कार-क्रान्ति का सिंहनाद हो सके ऐसे साहित्य का प्रकाशन किया जाए। वैसे आज साहित्य की कमी नहीं हैं किन्तु उन्नत संस्कार देने वाले साहित्य की कमी हर क्षण महसूस होती रहती है। इसी कमी की पूर्ति हेतु हमारे द्वारा सत् साहित्य, कथा साहित्य, कविता साहित्य आदि का प्रकाशन कार्य प्रारम्भ किया गया।

श्री शान्ति मुनि जी म.सा. आचार्य नानेश के विद्वान् सुशिष्य बहु आयामी प्रतिभा के धनी हैं। म.सा. श्री ओजस्वी वक्ता, कथाकार, कुशल लेखक, मृदुल स्वभावी संत हैं। आप अपने प्रवचनों में एवम् व्यावहारिक जीवन में किसी से राग-द्वेष न रखते हुए सत्य को सत्य कहने में कभी हिचकते नहीं हैं। आप उच्च-निच्च का भेद न रखते हुए सभी से समान, मृदुल व्यवहार रखते हैं। आप श्री हमेशा शान्त स्वभाव में रहते हुए प्रसन्न-मुद्रा में दिखाई देते हैं। आपके प्रवचन आत्मस्पर्शी होते हैं। आपके प्रवचन गीतिका के रूप में प्रारम्भ होकर यथा प्रसंग दृष्टान्त, घटनाक्रमों आदि से ओत-प्रोत रहते हैं।

उक्त पुस्तिका में पण्डित रत्न श्री शान्ति मुनि जी म.सा. के 8 प्रवचनों को प्रकाशित कर पाठकों के समक्ष प्रस्तुत कर रहे हैं। अगर आप सुख-शान्तिपूर्वक जीना चाहते हैं तो शान्ति-सम्बोध के सभी भाग जो हम समय-समय पर प्रकाशित करेंगे- पढ़े, चिन्तन-मनन करें एवम् अपनायें तो निश्चित ही आपको आत्म-शान्ति मिलेगी ऐसा हमारा विश्वास है।

दिनेश कंठालिया
(दिनेश कंठालिया)
सचिव
"संस्कार क्रान्ति संस्थान"
529, हिरण मगरी, से. 4 उदयपुर (राज.)

अनुक्रमणिका

जीवन को सम्यग् रीति से जीने की कला बहुत मुश्किल से आती है। यदि आ जाए तो फिर २३ घंटे आत्म साधना में बिताओ और एक घंटा सांसारिक वृत्तियों में लगे। आई क्या कला? आधी अधूरी भी नहीं आई। आधी भी आ जाए तब भी बहुत अच्छा है। कुछ प्रयास करके तो देखो। सारी पूर्ति हो जाएगी। कितना भी बाहर में दौड़ लो, संतोष नहीं मिलेगा। यहां जितना समय लगाओगे, उतनी ही निर्जरा होगी। कमाई को तो चोर ले जायेंगे, घरवाले हड़प लेंगे, लेकिन धर्म की कमाई तो अखूट है। उसे कोई नहीं ले सकता। वह परभव में आपके ही साथ रहती है।

1. जीवन की कला

(तर्ज :- तुम्हीं मेरे मंदिर ....)

अपनी ही आत्मा का शुभ ध्यान कर तू,
पर चिन्ता से निज को बचा ले।
पर की ही चर्चा में समय को न गाल तू,
केवल स्वयं के मन को सजा ले।।

कौन है कैसा कौन क्या करता,
कौन बुरा और कौन गुण भरता।
खुद है तू कैसा यही बस ध्याले।। परचिंता से........

ये तो है झूठा और वो है सच्चा,
मन तेरा व्यर्थ में ही बनता है बच्चा।
अपनी असत्यता पर मन तू ला ले।। परचिंता से........

इतना पराया इतना है अपना,
भूल जाता बंध तू जग सारा सपना।
मरने पर क्या है तेरा मन समझाले।। परचिंता से ......

निरर्थक कल्पना में पगला न वन तू ,
अनर्थ दण्ड कर्म बन्ध ढगला न वन तू।
स्वयं से स्वयं की 'शान्ति' तू पा ले।। परचिंता से ....

ज्ञानीजनों की प्रेरणा :

गीतिका की पंक्तियों में आत्म ध्यान के संदर्भ में संकेत प्रस्तुत किए गए हैं। ये संकेत इसलिए दिए जाते हैं कि हम स्वयं में स्थित हो जाएं- परभाव से ऊपर उठ जाएं और स्वभाव में रमण करें। इसी से बार - बार प्रेरणा दी जाती है। अनंत काल से हमारी आत्मा परभावों में रमण कर रही है। विभावों में जेल रही है विभाव को ही स्वभाव मान लिया है। अनादिकालीन से आत्मा ने विभाव को ही अपना स्वभाव बना लिया है। यह आत्मा अपने निजी स्वरूप में स्थित हो जाए, इसके लिए ज्ञानीजन बार- बार झक झोरते हैं, मानवीय प्रज्ञा को उभारने के लिए प्रयास करते हैं। गुरु भगवन्त, आचार्य देव यही उद्‌बोधन देते रहते हैं कि बहुत समय से परभावों में घूम रहे हो, अब अपने घर लौट चलो। दूसरे के घर में जाकर तुम अपने घर को क्यों भूल गए हो? अपना स्वरूप विस्मृत कर चुके हो। अब खुद को पहचानो। एक बार यदि विस्मृति में पड़ भी गए तो पुनः खोज की जा सकती है। सुबह का भूला यदि शाम के समय घर आ जाए तो वह भूला हुआ नहीं कहलाता। अब भी कुछ नहीं बिगड़ा है। मानव जीवन का सुअवसर प्राप्त हुआ है। अपने घर में लौटना ही उचित है। आखिर निज घर तो निज घर ही है और पराया पराया ही रहता है। अपने घर में अपनी पूर्ण सुरक्षा, स्वतन्त्रता और प्रभुत्त्व रहता है, जबकि दूसरे के घर में वह सब कुछ नहीं होता। यही परभाव से ऊपर उठने के संकेत प्रस्तुत गीतिका में दिए गए हैं।

अपनी ही आत्मा का शुभ ध्यान कर तू।
पर चिंता से निज को बचा ले।।
पर की ही चर्चा में समय को न गाल तू।

केवल स्वयं के मन को सजा ले।।

गीतिका में बताया है कि दूसरों की चर्चा में हम अपने समय को नहीं बिताएँ। उतने समय में अपनी आत्मा का चिन्तन करें तो हमारे जीवन का कल्याण हो सकता है। दूसरी सब बातें मनुष्य के लिए बहुत अधिक उपयोगी नहीं - दूसरे व्यक्तियों की चिंता करने से हमें क्या लाभ मिलेगा, लेकिन जीव का ऐसा ही स्वभाव और अभ्यास बन चुका है। वह जितना समय अनुपयोगी कार्यों में लगाता है और जितनी शक्ति उस तरफ खर्च करता है, उतना समय और शक्ति अपने लिए नहीं लगाता। सांसारिक कार्यों की महत्ता कितनी है? बहुत कम - केवल जीवन निर्वाह तक ही सीमित है, लेकिन उसे जीव ने अपने लिए क महत्त्वपूर्ण और उपयोगी बना लिया है। जीवन की पूर्ति तक ही वे सारे सीमित नहीं रहते, वे सब मानव के अनिवार्यतम अंग बन जाते हैं। अनेकों प्रकार के कार्य - व्यापार - धन्धे के, परिवार को चलाने के, शरीर को स्वस्थ रखने के प्रयास - ये सारे कार्य बेशक किसी सीमा तक उपयोगी है, लेकिन उनमें इस हद तक डूब जाना भी अनुचित है कि अपनी आत्मा को नितान्त ही विस्मृत कर दिया जाए।

आप व्यावहारिक दृष्टि से सोच लें। मान लो किसी व्यक्ति की दो दुकानें हैं। एक कपड़े की है दूसरी किराना की है। कपड़े की दुकान पर रोजाना 10,000 - 15000 रुपयों की विक्री हो जाती है, जबकि किराने की दुकान पर इतनी नहीं हो पाती। दिन भर में बड़ी मुश्किल से 400 - 500 का ही व्यापार हो पाता है। अब वह व्यक्ति किस दुकान पर अधिक ध्यान और समय देगा? सीधा-सा गणित है जो अच्छा लाभ दे रही है, उसी को वरीयता मिलेगी। ज्यादा इनकम के लिए प्रत्येक

मनुष्य लालायित रहता है। यह तो आपका न्याय है, बन्धुओं? हमें तो उन सब में घात ही मालूम देता है। चाहे कितना भी करोड़ों का व्यापार हो, लेकिन आत्मा की प्राप्ति के विचार से सोचें तो वह भी नगण्य है। आपने किसे प्राथमिकता दे रखी है। जहां ज्यादा नोट बरसें, जहां भौतिकता की वृद्धि हो, वही रास्ता आपको अनुकूल और लाभदायक लगता है। जहां अधिक पद - प्रतिष्ठा और अहं पोषण का अवसर हो, उसी ओर दौड़ रहती है आपकी। उसी के लिए सुबह से रात तक लगे रहते हैं। रात के बारह बजे तक हिसाब- किताब करते हो और सुबह होते ही चार बजे ही माल खरीदने रवाना हो जाओगे। क्यों? वही उपयोगी मान रखा है, इसलिए। इतना उपयोगी जो क्षेत्र है नहीं उसी को आपने सब कुछ मान लिया है और साधना को कुछ भी नहीं समझा कभी समय निकल आया तो चले आए उपाश्रय में, वरना कुछ ध्यान नहीं। कभी साधु संत कहें भी - प्रेरणा भी दें तो झट से कह दें - "महाराज साहब, क्या करें, समय ही नहीं मिलता।" अन्यथा कोई न कोई व्यवधान - बहाने खड़े कर लेंगे। आज तो यह काम अवश्य करना है कल धर्म स्थान चले जायेंगे। आज तो अमुक के तगादे जरूर जाना है। जबकि सारा तत्व आत्मा में निहित हैं। सारी सृष्टि का स्वरूप अपनी आत्मा में समाया हुआ है, लेकिन मनुष्य भौतिक ऋद्धि - सिद्धि में फंसकर आत्म तत्व को बिलकुल भुला चुका है।

परमात्मा की प्राप्ति का साधन तो साधना का जीवन हैं। यह जीवन परमात्मा को भी प्यारा है। कहा जाता है -

फकीरी खुदा को प्यारी है।
अमीरी कौन बिचारी है।।

प्रभु को क्या प्रिय है? अमीरी या फ़कीरी? बंधुओ, आपकी धन - दौलत, अमीरी आपको भले ही लुभाती हो लेकिन हमें तो यह सब व्यर्थ का भार दिखाई देता है। आप लोगों को इसमें कोल्हू के बैल की तरह चक्कर लगाते देखकर सचमुच हमको बड़ी हंसी आती है। आपकी बुद्धि पर तरस भी आता है। जो सच्ची शांति त्यागमय जीवन में हैं, वह आपके भोग - विलासों में कहां मिल सकती है? हमारी मस्ती का आलम ही निराला है।

फकीर की मस्ती :

एक अलमस्त फकीर रेगिस्तान में चला जा रहा था। गर्मी के जेठ बैशाख के दिन थे। नीचे बालू तप रही थी और ऊपर से दोपहरी का सूरज आग बरसा रहा था। वह मस्त फकीर इस प्रकार मजे में चल रहा था जैसे कि ठंडी हवा में किसी उद्यान में टहल रहा हो। उसके तन को कुछ भी गर्मी का विचार नहीं सता रहा था। आत्मा के चिन्तन में खोया वह मस्त गति से चला जा रहा था। पीछे से एक अमीरजादा ऊँट पर सवार होकर आ रहा था। पीछे नौकर भी उसी ऊँट पर हाथ मे छाता पकड़े हुए चल रहा था, उस नौकर के एक हाथ में छाता था और दूसरे हाथ में पंखा था। वह एक हाथ से बराबर अमीर को पंखा करता चल रहा था। हाथ के छाते को ऊँचा उठाया हुआ था कि कहीं अमीर को धूप न लगे। गर्मी न सताए। अमीर व्यक्ति ने अपने धन के द्वारा गर्मी के मौसम में भी अपनी सुरक्षा का पक्का प्रबंध कर रखा था। ऊँट पर ही बढ़िया सुगंधित केवड़ा पड़ा हुआ रस भी साथ में था। कुछ दूर जाने पर वह थोड़ा - थोड़ा पेय पदार्थ पी लेता, ताकि भयंकर गर्मी से शरीर को कोई हानि न हो। किसी आवश्यक

कार्य से उस अमीर को एक गांव से दूसरे गांव में जाना पड़ रहा था। वह गर्मी को कोसता हुआ नौकर को बराबर हिदायत देता चल रहा था कि पंखा तेज घुमाओ या छाता ठीक से पकड़ो। रास्ते में उस अमीर व्यक्ति ने अपने आगे चलते हुए फकीर को देखा। फकीर तो सारी दुनिया से बेसुध अपनी मस्ती में चला जा रहा था। ऊँट पीछे आ रहा था। अमीर ने उसे देखा। उसको बहुत आश्चर्य हुआ। उसने सोचा - "यह कैसा व्यक्ति है? तन पर ठीक से कपड़े भी तो नहीं है। शरीर- सुरक्षा का कोई प्रबन्ध नहीं है। इस भयंकर गर्मी में मेरा तो हाल बुरा हो रहा है। इस तपती हुई बालू पर नंगे पैर चल रहा है, यह कैसा मनुष्य है? इसकी मस्ती कितनी मनहूस है। खुद को भी बचाने की इसमें शक्ति नहीं है।" अनेकों प्रकार के संकल्प - विकल्प उसके दिल में करवटे लेने लगे। उसने आखिर फकीर से पूछ ही लिया - "ऐ, तू कौन है?" फकीर ने यह आवाज सुनकर पीछे देखा। उसका ध्यान भंग हुआ। उससे प्रश्न पूछने वाला ऊँट पर सवार था। फकीर ने एक नजर उसकी ओर देखा, फिर कहा - "भाई, जो तू है, वही मैं भी हूं। तू भी एक आत्मा है और मैं भी एक आत्मा हूं।" बात बड़ी सीधी थी, लेकिन अमीर को यह बात तीर की तरह चुभ गई। उसने कहा - "वाह, मेरी बराबरी करता है, तेरी इतनी हिम्मत। कहां तू नंगे पांव पैदल चलने वाला और कहां मैं ऊँट पर सवार हूं, मेरी क्या बराबरी की तूने? तू फटे हाल है जरा अपना तन तो देख। तेरा वजूद भी एक लांछन की तरह लग रहा है।" अमीरी बोल रही थी। अहंकार के गरूर में पैसा बोल रहा था, आदमी नहीं बोलता, बंधुओं अहंकार बोलता है। किसी को जरा धन - संपदा मिल जाए या मिनिस्टर की कुर्सी मिल जाए,

7. चिन्तामणि रत्न

(तर्ज : जन्म - जन्म का साथ है..)

अनन्त शक्ति भंडार है यह चेतन तुम्हारा ....

(प्रार्थना पूर्ववत्.....)

हीरे का पारखी :

चैतन्य की अपार - अमित शक्ति के संदर्भ में हमारी विचारणा चल रही है। हमारी यह सबसे बड़ी भूल है कि हम अपने आपको शक्तिहीन और अकिंचित्कर मान लेते हैं, जबकि हमारे में हमें अपनी वास्तविक स्थिति का - अपनी आन्तरिक संपदा का बोध नहीं है, तभी तो अपने को दरिद्र मान लेते हैं - दीन-हीन और कमजोर समझ लेते हैं। जिसके हाथ में चिन्तामणि रत्न हो, वह व्यक्ति क्या गरीब रह सकता है? उसे तो सर्वोत्तम संपदा मिल गई है, तो वह निर्धन क्यों कर हुआ? चिंतामणि रत्न द्वारा जो भी चिन्तन किया जाए, वह तत्क्षण पूरा होता है, लेकिन यदि चिंतामणि के धारक को उस रत्न की बहुमूल्यता का - उसके महत्त्व का बोध ही न हो तो वह अपने को सामर्थवान् कैसे समझ सकता है? वह तो गरीब ही रहता है। सर्वोत्तम संपदा पाकर भी बोध न होने से - सही पहचान न होने से यही दशा होती है। ठीक यही दशा संसार के मोह ममत्व में उलझी हुई आत्माओं की है। संसार के अनंत चक्र में भटकती आत्माओं को अपने में छिपी अपार निधि का ज्ञान नहीं है, इसी से वे दुःखों के गहरे सागर में नित्यप्रति गोते लगाती रहती हैं। जो कुछ बोध है, वह ना कुछ तत्वों का है। आत्मा की शक्ति को जानने के अभाव

में वह आदरणीय तत्वों को उपेक्षणीय कर देता है। जिसको सच्चे हीरों की पहचान न हो वह हीरे को क्या समझे? हीरे की शेप के रंग - बिरंग कांच के या प्लास्टिक के टुकड़ों को ही वह हीरा मान लेगा। एक तरफ यदि वे रंग - बिरंगे काँच के टुकड़े रख दिए जाएं और एक ओर असली हीरा रख दे तो वह कांच के टुकडों को ही हीरा मान कर उठा लेगा, क्योंकि वे भी हीरों की तरह चमकते हुए दिखाई दे रहे हैं। उसके लिए मूल्य चमक का है, आव का नहीं - ऊपरी चकाचौंध का है आन्तरिक तेजस्विता का नहीं। यही दशा मोहग्रस्त मानव की है। मोह दशा व्यक्ति को कहां से कहां ले जाती है, इस सम्बन्ध में एक प्रसंग मैंने पढ़ा था। इस आख्यान में मोह के पाश की भयंकरता का उल्लेख हैं।

ब्राह्मण और घड़ियाल :

एक कर्मकाण्डी ब्राह्मण किसी बड़े सम्पन्न सेठ को गीता का पाठ सुनाने जा रहा था। वह अपने घर से निकला। उसे थोड़ा विलम्ब हो गया था, इस कारण तेज कदमों से चल रहा था। वह सेठ दूसरे गांव में रहता था। बीच में एक नदी पड़ती थी। दूसरे गांव जाने के लिए नदी पार करनी थी। ब्राह्मण जैसे ही नदी के तट पर पहुंचा, कि एक घड़ियाल नदी में से बाहर निकल आया। ब्राह्मण उसको देखकर भयभीत हो गया। उसने सोचा कि आज जान नहीं बचेगी, लेकिन वह घड़ियाल मनुष्य की बोली में कहने लगा- "ब्राह्मण देवता, तुम डरो नहीं मैं तुम्हें कुछ नहीं कहूंगा। तुम तो मुझे केवल यह बता दो कि तुम कहां जा रहे हो?" ब्राह्मण ने सच बात बता दी - "मैं नदी पार के गाँव में अमुक सेठ को गीता का पाठ सुनाने जा रहा हूं।" घड़ियाल बोला - "विप्रदेव, आप पहले मुझे गीता

का पाठ सुनाओ। सेठ के यहां बाद में जाना।'' ब्राह्मण डरा हुआ तो था ही। वह तुरन्त अपना आसन और पोथी - पत्रा निकाल कर गीता सुनाने बैठ गया। गीता का एक अध्याय पूरा होने पर वह उठ गया। तभी घड़ियाल ने नदी में डुबकी लगाई और बाहर आया तो एक सच्चे मोती का हार लाकर ब्राह्मण के समक्ष रख दिया। मोती बहुत सुंदर और कीमती थे। घड़ियाल ने कहा- ''विप्रदेव, आपने बड़ी अच्छी कथा सुनाई। रोज आप पहले मुझे गीता का पाठ सुनाया करो। यह आपकी आज की दक्षिणा है।'' इतना कहकर वह मोती का हार उसे दे दिया। ब्राह्मण की तो आँखे फटी की फटी रह गईं। ऐसे मोती उसने अपने जीवन में कभी न देंखे थे। उसने सोचा - ''सेठ तो पूरी गीता सुनने के बाद भी इतनी दक्षिणा नहीं देगा जो यहां एक दिन की ही मिल रही है। उसे लालच आ गया - ''ठीक है, मैं हर रोज इंसी समय आकर आपको गीता का पाठ सुना दूंगा।'' यह कह कर ब्राह्मण नदी के पार सेठ के घर चला गया। सेठ ने देरी से आने का कारण पूछा तो ब्राह्मण ने असली बात छुपा कर कोई अन्य बहाना कर दिया। उस दिन के बाद ब्राह्मण रोज घड़ियाल को गीता का एक अध्याय सुनाता और घड़ियाल प्रतिदिन एक मोतियों का हार दक्षिणा में दिया करता। ब्राह्मण का मन घड़ियाल को सुनाने में जितना अच्छी प्रकार लगता, उतनी श्रद्धा से वह सेठ को नहीं सुनाता था। सेठ के यहां रोज बिलम्ब से पहुंचता। सेठ भी ब्राह्मण का आदर कम करने लगा, लेकिन उसको तो मोतियों का लोभ पड़ा हुआ था। कई दिनों के बाद एक दिन गीता का पाठ संपूर्ण हो गया। जब ब्राह्मण ने पाठ समाप्त किया तो घड़ियाल बोला- ''विप्रदेव, आज आपने गीता का समापन किया

है, अतः आज की दक्षिणा विशेष होनी चाहिए।'' इतना कहकर वह नदी में डुबकी लगा गया। बाहर आकर उसने अपने मुंह में से मोतियों से भरा हुआ एक घड़ा निकाला और ब्राह्मण से कहा - ''आज आप मेरी ओर से यह दक्षिणा स्वीकार करें। ब्राह्मण ने देखा कि पहले वाले मोतियों से भी अधिक बहुमूल्य उस घड़े के मोती थे। मोतियों से घड़ा पूरा भरा हुआ था। क्षण भर बाद घड़ियाल बोला - ''विप्रवर यदि आप मुझे इस नदी से निकालकर त्रिवेणी की पवित्र धारा में पहुंचा देंगे तो मैं आपको ऐसे - ऐसे पांच घड़े मोती भेंट में दूंगा।'' घड़ियाल की बात सुनकर ब्राह्मण एकदम बोला - ''हां, हां, मैं आपको अवश्य त्रिवेणी ले चलूंगा।'' घड़ियाल ने शुभ दिन - मुहूर्त पूछा तो ब्राह्मण ने झूठ मूठ उंगलियों पर गिनकर कहा - ''परसों का दिन बहुत शुभ है। मैं परसों सुबह आऊँगा। आप तैयार रहना। मैं आपको अपनी पीठ पर लादकर ले चलूंगा।'' ब्राह्मण खुश-खुश अपने घर गया और बड़ी बेचैनी से निश्चित समय की प्रतीक्षा करने लगा।

निश्चित दिन वह-सुबह ही नदी पर जा पहुंचा। वहां घड़ियाल तैयार ही बैठा था। ब्राह्मण ने उसको अपनी पीठ पर बैठाया और त्रिपथगा के तट पर लाकर छोड़ दिया। जैसे ही उसने घड़ियाल को अपनी पीठ पर से उतारा तो वह जोर से हँसा। ब्राह्मण समझ नहीं सका कि घड़ियाल क्यों हंसा है। उसने सोचा कि शायद यह पांच घड़े मोती नहीं देगा। मुझे बुद्धु बना लिया है, इसी से हंस रहा है, लेकिन उसकी सोच गलत निकली। घड़ियाल ने उसी समय अपने मुंह से पांच घड़े मोतियाँ से लबालब भरे हुए निकाल दिए। ब्राह्मण ने प्रसन्नता से मोती देंखे। मोती बिल्कुल सच्चे

थे। वह खुशी से फूला नहीं समाया। उसने सोचा - "मेरी पीढ़ियों तक भी समाप्त न हो इतना धन मुझे मिल गया है। मेरे तो भाग्य खुल गए।" मोतियों के घड़े उसने उठाए ही थे कि उसके मन में जिज्ञासा हुई। उसने सोचा कि आखिर घड़ियाल हँसा क्यों? जब उसकी समझ में नहीं आया, तो उसने घड़ियाल से पूछा - "घड़ियाल भाई, आपकी हंसी में मैंने व्यंग्य अनुभव किया। आप मुझे बतायें कि आपकी हंसी का कारण क्या था?" पहले तो घड़ियाल टालता रहा, लेकिन ब्राह्मण के बहुत आग्रह करने पर उसने कहा - "यदि आप मेरे हंसने का कारण जानना ही चाहते हैं तो अवंती नगरी में मनोहर धोबी के घर जाइये। उसका गधा आपको बताएगा कि मैं क्यों हंसा?" इतना कहकर ब्राह्मण को हैरत में खड़ा छोड़कर घड़ियाल तो त्रिपथगा गंगा की धार में तैर गया। ब्राह्मण अपनी जिज्ञासा को शान्त करने के लिए अवन्ती नगरी पहुंचा। घड़ियाल की हंसी का कारण जानने से भी अधिक उत्सुकता उसको होने लगी थी इस बात से कि धोबी का गधा कारण बताएगा। अवन्ती नगरी में जाकर वह ब्राह्मण धोबियों के मुहल्ले में गया। वहां मनोहर नाम के धोबी का पता लगाया। पूछते-पूछते वह ब्राह्मण उस धोबी के घर जा पहुंचा। धोबी से कहा - "भाई, तुम्हारा ही नाम मनोहर है?" वह बोला - "हां, कहिए, क्या काम है?" पंडित जी बोले - "काम तुमसे नहीं है, तुम्हारे गधे से है। मैं तुम्हारे गधे से मिलना चाहता हूं।" आस- पास बैठे हुए अन्य व्यक्ति भी चकराए कि पंडित जी गधे से मिलकर क्या करेंगे? मनोहर धोबी ने कहा - "वह देखो, नीम के पेड़ के नीचे मेरा गधा बंधा है। आप वहीं चले जाइये। मिल लीजिए उससे।" ब्राह्मण गधे के पास पहुंचा। गधा

दूर से ही ब्राह्मण को आते हुए देखकर शुद्ध संस्कृत में बोला - "आइये, विप्रदेव! घड़ियाल के कहने पर आप यहां आए हैं न?" पंडित जी हैरान रह गए। मनुष्य के स्वर में गधा बोल रहा है और उसे पंडित जी के आने का कारण भी ज्ञात है। बड़ा आश्चर्य था पंडित जी को! वे सहमति में केवल सिर ही हिला सके। मुँह से बोल भी नहीं निकल पाया। गंधा पुनः बोला- "आप यही पूछने आए हैं न कि घड़ियाल गंगा पर जाकर क्यों हंसा था?" ब्राह्मण देव अत्यधिक विस्मित होते जा रहे थे। मनोहर ध ोबी तथा उसके अन्य साथी भी उत्सुक होकर वहीं आ गए थे। सबके सामने ही गधे ने कहना शुरू किया - "ब्राह्मण देव, घड़ियाल क्यों हंसा, इसका कारण बताने से पहले मैं अपनी बात बताता हूं। तुम्हें मेरे विषय में भी उत्सुकता हो रही है। सुनो, इस जन्म में मैं गंधा हूं, किंतु पहले जन्म में राजा का सेवक था - विश्वासपात्र सेवक था। राजा का मुझ पर बहुत प्रेम था। एक बार राजा काशी में पधारे। गंगा का शांत, रमणीय, पावन तट देखकर वे वहीं रूक गए। उनका मन काशी में लग गया। मैं भी राजा के साथ ही था। राजा ने मुझसे कहा- "मैं तो यहीं रहकर आत्मसाधना करना चाहता हूँ। तुम भी मेरे साथ भगवद् भजन करना या चाहो तो यहीं रुक जाओ और यदि न रूकना चाहो तो दस हजार स्वर्ण मुद्राएँ लेकर चले जाओ। मुझे धन - वैभव और राज्य लिप्सा का लालच आ गया। मैंने कहा मैं जाना चाहता हूं । उत्तम अवसर मिलने पर भी साधना से मुँह मोड़ने और मोह जाल में फंसने के कारण इस जन्म में मैं गधा बना। वह घड़ियाल तिर्यंच प्राणी होते हुए भी अपना जीवन सुधार गया। उसने अपना बुढ़ापा गंगा के पवित्र वातावरण में

बिताने का प्रयास सफल बना लिया, लेकिन तुम गंगा के तट पर आकर भी मोती लेकर लौट गए। घड़ियाल तुम्हारी मूर्खता को देखकर हंसा था कि यह कैसा नादान है जो बहुमूल्य मोक्षाराधना को छोड़कर कंकर लेकर जा रहा है। कंकर ही तो हैं, हीरे मोती और क्या हैं? यह चिंतन का विषय है कि एक तिर्यंच प्राणी तो इस रहस्य को समझ रहा है और मनुष्यों में सर्वोच्च कहलाने वाला ज्ञानी ब्राह्मण इतनी बात भी नहीं जानता इसीलिए घड़ियाल हंसा था।

गधे की बात सुनकर पंडित जी के आत्मचक्षु खुले। उन्हें अपनी भूल पर पश्चाताप होने लगा। पाँचों घड़े मोती वहीं धोबियों में बांट कर वे साधनारत होकर वहीं अवंतीनगरी में रहने लगे। बंधुओं यह वैष्णव परंपरा की बात है कि वे गंगा पर जाकर मोक्ष प्राप्ति को सफल बनाना मानते हैं। आप यूं समझिए कि यहां त्रिवेणी का भाव धर्म स्थान है। मंदिरों में तीर्थस्थानों में जाते हैं और छोटी- मोटी माँग लेकर - ना कुछ पदार्थों के पीछे अपनी साधना का सौदा करके वापस लौट आते हैं। भगवान् से सांसारिक वस्तुएं माँग लेते हैं, मुक्ति जैसी महानिधि को नहीं माँगते, न ही उसके लिए प्रयास करते हैं। भौतिकता में उलझ कर रह जाने में कोई समझदारी नहीं कही जा सकती। यह तो नासमझी ही कही जाती है। हमारी आत्मा में अनन्त विधि - अखूट खजाना छिपा है, लेकिन उसे हम भूल जाते हैं। बाहर के वैभव की ओर दौड़ते रहते हैं। अपनी अनन्त सामर्थ्यों का हमें पता ही नहीं लग पाता और सारी जिन्दगी इसी नादानी में बीत जाती है। इसी से गीतिका में कहा-

कर में तो है चिन्तामणि तुम दर-दर ठोकर खाते,

मरु मृग सम तुम तृष्णा वश हो माया में भरमाते।

अन्तर्दृष्टि से तुम देखो शक्ति का नहीं पारा। अनंत ......

अपने पास ही सब कुछ है, लेकिन खुद को पता ही नहीं है और बाहर में खोजते फिर रहे हैं। जब दृष्टि बदले तभी तो अन्तरंग की निधि को देखने का भाव जागृत हो। संसार के सारे तत्व उपेक्षित हैं - हेय हैं यानि छोड़ने योग्य है। उपादेय तो केवल आत्मा है। अनन्त ज्ञान दर्शन चरित्र की एकनिष्ठ आराधना ही अंगीकार करने योग्य और ग्रहण के योग्य तत्व है। संसार का प्रत्येक पदार्थ छूटने वाला है।

शास्त्र का विषय :

सुबाहु कुमार के चरण वैराग्य की ओर तो नहीं, लेकिन आत्मशक्ति की पहचान की ओर बढ़े । उसने अपने जीवन का उद्देश्य समझ लिया। सुख विपाक सूत्र के वर्णन में आप सुन रहे हैं कि वह किस प्रकार साधना की ओर उन्मुख हो रहा है। बंधुओं, साधना करने के लिए साधु बनना आवश्यक है किन्तु ग्रहस्थ भी श्रावकव्रत धारण करके बहुत से पापों से स्वयं को बचा सकता है। आपको बताया जा चुका है कि अहिंसाव्रत और सत्यव्रत सुबाहु कुमार ने सूक्ष्म रूप में समझें और वे दोनों व्रत पाव जीवन के लिये अंगीकार किए। तीसरा व्रत भी वह समझता है और उसे भी धारण करने के लिए प्रस्तुत होता है। तीसरा व्रत है अचौर्यव्रत। श्रावक के लिए पांच अणुव्रत बताए उनमें तीसरा अचौर्य अणुव्रत है। स्थूल रूप में चोरी न करना यही अचौर्य व्रत का मतलब है। श्रावक दो करण तीन योग से व्रत स्वीकार करता है। इसके अनेक भेद हैं लेकिन मुख्य रूप से तीन भेद हैं - मनसा, वाचा, कर्म

अर्थात् चोरी करना नहीं, कराना नहीं, मन से किसी वस्तु को चुराने की इच्छा न करना - किसी के अधिकारों का हनन न करना। वचन से किसी को चुराने के लिए कहना और काया से किसी की कोई चीज हड़प लेना - जबरदस्ती छीन कर अपनी कर लेना या उसकी बिना अनुमति उठा लेना। जब चोरी की क्रिया होती है तो वह दो तरह से होती है - एक क्रिया तो वह जो किसी वस्तु के वास्तविक मालिक की अनुपस्थिति में की जाती है दूसरी वह है जो वस्तु के स्वामी के मौजूद रहने पर चोरी की जाती है। वह कैसे? यह चोरी बड़ी भारी होती है। जिसकी वस्तु है, वह व्यक्ति सामने खड़ा हो और उसके सामने चोरी की जाए। किसी को डंडे मार कर उसका माल छीन लेना, लूट लेना, डाका डालना आदि इसी के अन्तर्गत आता है। इसे डकैती कहते हैं। रास्ते चलते वस्तु के स्वामी की उपस्थिति में उसकी वस्तु की चोरी इस प्रकार की जाती है। कोई व्यक्ति असावधान हो या सोया हुआ हो तो उस हालत में उसकी चोरी तो अनुपस्थिति में की हुई चोरी है लेकिन वह व्यक्ति मन से उपस्थित नहीं है, इस अपेक्षा से वह उपस्थिति में की हुई चोरी की श्रेणी में आती है। इस व्रत में बोलते हैं - ''खात खण कर, गांठ खोल कर, ताले पर कुंची लगा कर, मार्ग में चलते हुए को लूटकर अथवा पड़ी हुई मोटी धणियाती वस्तु लेने का मैं त्याग करता हूं।'' किसी दूसरे की वस्तु है ऐसा जानते हुए भी उसे उठा लेना चोरी है, इसी तरह जेब काटना भी चोरी है, लेकिन मैं आपसे पूछ लूं कि ग्राहकों को लूटना क्या है? अच्छा माल दिखा कर बुरा माल देना और कम मूल्य का माल अधिक मूल्य में बेचना क्या यह सब भी चोरी नहीं है? किसी की वस्तु हजम करना भी चोरी है। गलत लेख लिखना भी चोरी में ही आता है।

इसी प्रकार अचौर्य व्रत में स्थूल चोरी का त्याग करने का व्रत लिया जाता है। राज्य दंड का भय हो, लोगों में अप्रीति होती हो तो श्रावक ऐसी चोरी का त्याग करता है। वैसे आजकल किसी ने किसी का यदि एक रुपया ले लिया तो उसे पकड़कर पीटेंगे, चोर कहेंगे। जरा विचार करो कि आप हजारों की चोरी हिसाब - किताब में झूठे लेख लिखकर कर देते हो। ये सभ्य चोरियां आजकल खूब होती हैं। ऐसी चोरियाँ करने वाले बड़े - बड़े सेठ होते हैं। कोई ऐरा - गेरा ऐसी सभ्य चोरी नहीं कर सकता। बड़े लोग - प्रतिष्ठावान् व्यक्ति ही ये चोरियाँ किया करते हैं और उनके लिए ये चोरियाँ करनी आवश्यक बन गई हैं। यदि न करें तो एक दिन भी गुजारा न चले। गर्वनमेंट के टैक्स की लाखों की चोरियां रोज होती हैं। असभ्य और साधारण किस्म की चोरियाँ तो बहुत प्रकार की होती हैं लेकिन ये सभ्य चोरियाँ तो साधारण व्यक्ति से लेकर प्रशासन तक की नस-नस में व्याप्त हो चुकी हैं। कहने का अर्थ यह है कि ऊपर से नीचे तक सारे व्यक्ति ही चोर हैं। एक कवि का कथन है :-

चोर - चोर - चोर ये तो चारों, बाजू चोर,
आ दुनिया माँ जा-जुवो-त्यां चोर - चोर - चोर।
कोई धन चोर कोई मन चोर कोई चितड़ा नूँ चोर।।

क्या बताया? सब तरफ चोर हैं। साहूकार कौन है? है क्या कोई? सभी हैं साहूकार? अपने-अपने मन में सब खुश हो लेते हैं। अपने को चोर कोई नहीं कहता। सभी साहूकार बताते हैं। ऊपर से कुछ और आचरण दिखता है और भीतर से भाव कुछ और होते हैं। ऊपर से बढ़िया पालिश किए हुए चेहरे दिखते हैं, लेकिन अंदर में कितना छल-कपट-दम्भ भरा

है इसका क्या पता चलता है? इसी से धोखा खाना पड़ता है। घरों में, व्यापार में, सब जगह आजकल ऊपरी प्रदर्शन का बोलबाल है। कई बार पेपर में ऐसे - ऐसे समाचार पढ़ने को मिलते हैं कि ऊपर से सोने की पालिश करके सोने - चांदी के जेवर कोई व्यक्ति किसी दुकानदार को बेच गया। इतना अनुभवी होने पर भी दुकानदार धोखा खा जाता है। ऊपर से चमकता हुआ देखकर वह बिना कसौटी पर घिसे उसे ले लेता है और ठगा जाता है। यह धोखा-धड़ी करने वाला इस बात को सोचता नहीं कि दूसरे व्यक्ति का कितना नुकसान होगा, उसे तो अपने काम से काम। ऐसे कार्यों का भी श्रावक त्याग करता है। आजकल के व्यापार की यह दशा है और घरों की क्या है? घर में चाहे दो वक्त का भोजन भी ठीक से नहीं होगा लेकिन बाहर में कैसे दिखावा करेंगे? कृत्रिमता को भी चोरी कहा जाता है। यह भाव - चोरी है। बड़ी - बड़ी प्रतिष्ठित फर्मों की हालत का पता है? लोगों में प्रतिष्ठा जमा रखी है, लेकिन फर्म की आर्थिक स्थिति बिल्कुल निल है। प्रत्यक्ष में बहुत बड़े सेठ हैं, लेकिन लाखों का उधार खाए बैठे हैं। लोगों को धोखा दे रखा है। जब लेनदार बढ़ जाते हैं, तब दिवालिया घोषित हो जाते हैं। जनता को दीवाला निकलने के बाद असली स्थिति का ज्ञान होता है। यह भी चोरी ही है। लोगों पर विश्वास जमा कर उनका माल हड़प लेना यह चोरी है।

धोखाधड़ी कैसी - कैसी :

उदयपुर में कुछ समय पहले एक ऐसी ही घटना घटी थी। एक व्यक्ति ने बढ़िया फर्नीचर लगा कर बहुत आकर्षक दुकान और ऑफिस बनाया। किराए पर दुकान ले ली। उसकी साज-सज्जा बहुत अच्छी प्रकार

की। काम शुरू किया। अच्छी साख बना ली। किसी से 15,000 किसी से 20,000 और किसी से 25,000 इस प्रकार उसने उधार रुपये ले लिये। बिजनेस में लेन देन चलता ही है। सब पर विश्वास जमा हुआ था कि इतनी बड़ी दुकान लेकर बैठा है। हमारा रुपया लेकर कहां जा सकता है? जब उसने बाजार से बहुत धन ले लिया तो एक रात ट्रक में सारा फर्नीचर भर कर रफू चक्कर हो गया। रात को एक भाई बता रहे थे कि सीमेंट में बहुत धोखा धड़ी होती है। नीचे ऊपर सीमेंट भरकर बीच में राख भरी जाती है। इस प्रकार बोरे बनाकर ट्रक में लाद देते हैं। ट्रक का सौदा हो जाता है। कई बार ट्रक लेकर जाते समय भी पकड़ा जाता है। उस समय रिश्वत काम आती है। रिश्वत देकर बच जाते हैं। एक सीमेंट क्या बंधुओं, ऐसे कई धंधे हैं। मुझसे एक बार रायपुर वाले मूथा जी बता रहे थे कि बंबई में एक बार क्या घटना घटी। पांच-सात मुसलमान मियाँ लोग बड़े अच्छे कपड़े पहने एक हीरे - जवाहरात की दुकान पर गए। उनकी वेश - भूषा खानदानी रईसों जैसी लग रही थी। वे दुकान के शोरूम में बड़े रौब के साथ प्रविष्ट हुए और दुकान के मालिक से कहा - "भाई साहब, अच्छे - अच्छे जेवर दिखाइये। सच्चे हीरों के होने चाहिए। वह सामने पालकी में बेगम साहिबा बैठी है उन्हें जरूरत हैं।" दुकानदार ने सामने देखा तो एक सुसज्जित पालकी दुकान के बाहर ही सड़क के किनारे खड़ी दिखाई दी। चार कहार पालकी के पास खड़े थे। बहुमूल्य रेशमी परदा उसमें लटका था। मोती की झालरों और सुन्दर कलाकारी से वह पालकी किसी नवाब के घराने की सम्पन्नता का परिचय

दे रही थी। दुकानदार को उन व्यक्तियों की बात का विश्वास हो गया। न होने वाली बात भी नहीं थी। उसने जेवर दिखाने शुरू कर दिए। ऊँची से ऊँची कीमत के जेवरात उन लोगों ने अलग छाँट लिए। कुछ गले के हार, कुछ बाजूबन्द - अंगूठियाँ - यानि सभी प्रकार के आभूपण लेने की बात उन्होंने कही। कुछ गहने एक पेटी में भर कर उनमें से दो व्यक्ति बेगम साहिबा को पसन्द कराने पालकी की ओर ले चले। बेगम पर्दानशीन है। वहीं बैठ कर जेवरात पसंद कर लेगी और हाथों हाथ नगद कीमत अदा कर देंगी - ऐसा उन्होंने कहा। उन व्यक्तियों ने कुछ जेवर अंदर पालकी की ओर बढाए और बाकी के वापस लाकर दुकानदार को दे दिए। कहा कि पसंदीदा जेवरात बेगम साहिबा ने रख लिए हैं, उनका बिल बनवा दीजिए, ताकि पेमेन्ट किया जा सके।

इसी बीच उनमें से एक व्यक्ति कहने लगा - "सेठ जी, बेगम साहिबा को प्यास लग रही है। पानी कहां मिल सकता है?" सेठ जी बड़ी तत्परता से बोले - "आप निश्चिन्त रहें, अभी बढ़िया शर्वत यहीं पर आ जाता है। हम बेगम साहिबा को कष्ट थोड़े ही होने देंगे, साहब।"

वह व्यक्ति बोला - "सेठ जी, बेगम साहिबा बड़े परहेज वाली हैं। वे आपका शर्बत आदि नहीं पीयेंगी। आप तो हमें कोई हैंड पम्प बता दीजिए। पालकी में घड़ा है। हम वहां से भर कर ले आते हैं।" सेठ जी तो इतने बढ़िया ग्राहक को पाकर हर्ष विभोर थे। झट से अपने मुनीम जी को संकेत किया - "मुनीम जी, इनके साथ पास वाले हैंड पम्प तक जाइयें।" मुनीम जी अपने स्थान से उठे। तीन आदमी मुनीम जी के साथ

चलने को तत्पर हुए। उनमें से एक ने पालकी में से एक घड़ा निकाला। वे तीन व्यक्ति मुनीम जी के साथ हैंड पम्प की ओर चल दिए। हैंड पम्प पर जाकर मुनीम जी को खड़ा रहने को कह कर वे तीनों घड़ा भरने का उपक्रम करने लगे। दो मिनट बाद ही जब मुनीम जी ने दृष्टि घुमाई तो वे तीनों व्यक्ति घड़े सहित गायब थे। मुनीम जी ने पांच-दस मिनट प्रतीक्षा की, सोचा -.''शायद इधर - उधर बीड़ी इत्यादि खरीदने चले गए होंगे, लेकिन जब काफी देर तक भी उनमें से कोई नहीं आया तो मुनीम जी दुकान पर लौट आए। उधर दुकान पर जो लोग थे वे भी एक - एक करके खिसते गए। मुनीम जी दुकान पर पहुंचे और सेठ जी से कहा - ''सेठ जी, वे लोग तो अभी तक घड़ा भरकर नहीं आए। इतनी देर इंतजार किया। अब मैं वापस आ गया।'' सेठ जी ने कहा - ''उनके साथ वाले और लोग भी तो थे, वे कहां गए?'' इधर - उधर देखा, लेकिन वहां कोई हो तो मिले।

सेठ जी अभी भी आश्वस्त थे कि बेगम साहिबा अभी यहीं है। आदमी गए तो कोई बात नहीं। उन्होंने जोर से आवाज दी- ''बेगम साहिबा, आपके आदमी कहां चले गए? वे अभी तक घड़ा भर कर नहीं लौटे।'' अंदर से कोई उत्तर नहीं आया। दो - तीन बार प्रश्न करने पर भी कोई उत्तर न पाकर पालकी का परदा हटाकर देखा गया तो वहां तो खाली खोखा था। अंदर कोई नहीं था। जेवर घड़े में भरकर वे लोग सेठ को दिन दहाड़े ठग गए थे। पानी भरने के बहाने माल घड़े में भरकर किस सफाई से ले गए।

बन्धुओं बड़े अजीब - अजीब तरीके प्रचलित हो गए हैं चोरी और धोखाधड़ी के । आप पेपरों में पढ़ों तो दंग रह जाओ। तस्करी का काम करने वाले क्या - क्या हथकंडे अपनाते हैं। सोने के बिस्कुट कैसे छिपाए जाते हैं- ये सब बड़ी हैरत वाले प्रसंग है। अनेकों प्रकार की सभ्य चोरियाँ आजकल जोर पकड़ती जा रही है। अर्थात् चोरी के नए - नए ढंग निकल गए हैं। व्रत धारण करने से अनेकों पापों से सहज रूप में बचाव हो जाता है। सुबाहु कुमार अचौर्य व्रत स्वीकार करता है। उसके अतिरिक्त अन्य व्रत भी वह अंगीकार करता है। आपके समक्ष उनकी विवेचना यथा समय ही आ सकेगी। आप सभी व्रतों के महत्त्व को समझकर उन्हें अपने जीवन में उतारें, तो आपका जीवन मंगलमय बनेगा, इसी शुभ भावना के साथ आज का वक्तव्य यही गौण करता हूं ...

20 अक्टूबर, 1989

ज्यादातर चोरी इसलिए होती है कि उनके पीछे बेकारी भुखमरी आदि कारण होते है। खाने को नहीं हो, बेकार घूम रहे हों तो चोरी सूझती हैं। दूसरे और भी कारण हो सकते हैं, लेकिन इसके पीछे आकांक्षा की अतृप्ति होती है। खाने को पर्याप्त है लेकिन फिर भी चोरी किसलिएं? आकांक्षा की निस्सीमता के कारण। तीव्र तृष्णा पूरी नहीं होती, तभी चोरी करते हैं। दुर्व्यसनों के कारण भी चोरी होती है। कोई व्यक्ति जुआ सट्टा खेलता हो तो चोरी करना पड़े। शराब पीने की आदत हो, भाँग - अफीम का दुर्व्यसन हो तब भी समय पर न मिलने पर चोरी करने का उपाय शेष बचता है। वेश्यागमन, माँस भक्षण भी ऐसे स्री-दुर्गुण हैं जो चोरी करने के लिए बाध्य कर देते हैं। इन कुव्यसनों में धन समाप्त हो जाता है, व्यक्ति खाली हो जाता है। पहले तो घर का धन लुटाता है। जब वह समाप्त हो जाता है तो घर में चोरी शुरू करता है। पहले- पहल घर की चोरी करता है फिर बाहर की भी शुरू कर देता है। ऐसा करते - करते पक्का चोर बन जाता है।

8. उपलब्धि का स्रोत

(तर्ज : बड़े भाग्य से तुमं :.....)

बड़े भाग्य से मानव देह पाया है।
भटका चौरासी मंझार, सहा दुःख अपार
महापुण्य उदय यहाँ आया है।। बड़े भाग्य से ....

तू ने नरक से दुःख उठाए, और तिर्यंच में कष्ट बहु पाए।
बढ़ा पुण्य का प्रताप, पाया देव - सुख अमाप,
फिर मानुष देही में चल आया है।। बड़े भाग्य से ....

यह अवसर सुन्दर पाया, पर विषयों में यो ही गँवाया।
मिली साधना वो काया भौतिक सुखों में लुटाया,
महापुण्य जो साथ में लाया है।। बड़े भाग्य से ....

यह मानव का तन है सुहाना, जग बन्धनों में मत तू लुटाना।
मुक्ति साधना का स्रोत तुझे मिला पुण्य योग,
क्यों लक्ष्य तू अपना भुलाया है।। बड़े भाग्य से ......

देव योनि-भोग यौनि मानी जाती, नरक निर्यंच है दुःख की थाती।
पाया नर भव नेक कर ले साधना विवेक,
यदि 'शान्ति' का लक्ष्य तू लाया है।। बड़े भाग्य से ....

सौभाग्य का उदय :

गीतिका की पंक्तियों में मानव जीवन की उपयोगिता व

सम्बन्ध में संकेत प्रस्तुत किए गए हैं। गीतिका में भाग्य के विषय में कहा गया है। यहां एक स्पष्टीकरण विशेष रूप से समझने का है वह है कि भाग्य क्या है? बहुत बार हम बोल दिया करते हैं – 'इसके भाग्य में ऐसा ही लिखा है' – 'हमारे ऐसे भाग्य कहां कि दीक्षा ले' अथवा हमारे भाग्य में ऐसा ही दु:ख उठाना लिखा है। इस प्रकार के शब्द बहुत बार हमारे मुख से दैनिक जीवन की बातचीत में निकला करते हैं। तत्वज्ञों ने भी यही कहा है कि भाग्य से ही प्रत्येक वस्तु मिलती है। रामायण में तुलसीदास ने कहा है–

बड़े भाग मानुस तन पावा, सुर दुरलभ सद्ग्रन्थनि गावा।।

अर्थात् बड़े भाग्य से मनुष्य का शरीर मिलता है। नरतन में जन्म लेना बहुत दुर्लभ है क्योंकि देवता भी इसके लिए तरसते हैं। यहां भी भाग्योदय की बात कही है। विशेष रूप से समझने की बात यह है कि भाग्य किसे कहते हैं? हमारा भाग्य कौन निर्माण करता है? बन्धुओं, हम अपना भाग्य स्वयं बनाते हैं। हमारे भाग्य का निर्माता हमारे अतिरिक्त अन्य कोई नहीं है। नीतिकार कहते हैं :

पूर्वजन्मकृतं कर्म तदैवमिति कथ्यते।

अर्थात् जो हमने पूर्व में कर्म किए हैं वही हमारा वर्तमान का भाग्य बन जाता है। जो अब वर्तमान में कर रहे हैं, वह भविष्य का भाग्य बन रहा है। अतीत को जैसा हुआ बना लिया – भूतकाल जैसा भी हो गया, लेकिन भविष्य का सुधार हम कर सकते हैं। भविष्य के लिए सुनहरी रूपरेखा बनाई जा सकती है। बच्चा जन्म लेता है। जन्म से ही उसके जीवन का निर्माण कार्य शुरू हो जाता है। डॉक्टर, इंजीनियर, व्यापारी

वगैरह जो कुछ भी उसके माता- पिता उसे बनाना चाहें, उसी के अनुसार उसका लालन - पालन- निर्माण शुरू हो जाता हैं। अर्थात् बच्चे के भविष्य का निर्माण बचपन में ही आरम्भ होने लगता है। जो कुछ भी उसका आगामी भविष्य बनाना है, वैसा ही उसका शिक्षण होने लगता है - उसी के अनुसार उसको सब्जेक्ट दिलाए जाते हैं। यदि डॉक्टर बनाना है तो साइंस, बायलॉजी लेना पड़ेंगे, यदि इंजीनियर बनाने का उद्देश्य है तो इंजीनियर साइंस पढ़ानी होगी। बचपन से ही भविष्य निर्धारण की भूमिका बांधने लगती है, ठीक इसी प्रकार अगले जीवनों का निर्माण वर्तमान के कर्म करते हैं। कहने का अर्थ यह है कि पुरुपार्थ को ही भाग्य बना लिया जाता है। पूर्व में जो पुरुषार्थ किया उनके कारण वर्तमान की स्थिति प्राप्त हुई और जो इस समय पुरुषार्थ हो रहा है, वह आने वाले जन्मों का निर्णायक बनेगा। यहां एक बात विशेष रूप से जानने की यह है कि पुरुषार्थ की शक्ति बहुत प्रबल है। जो पहले कर्म कर चुके हैं, वे भी पुरुषार्थ द्वारा बदले जा सकते हैं। यदि बुरे कर्म बांध रखे हैं तो उनको भी अच्छा बनाया जा सकता है। सत्कर्म किए - निर्जरा की, तो आने वाले कर्मोदय बदल जायेंगे। यह पापकर्म पुण्य कर्म में संक्रमित हो सकते हैं। कर्म सिद्धान्त में संक्रमण करण का विपय आता है, यानि पूर्व में बांधी हुई अशुभ कर्मों की प्रकृतियों को शुभ कर्म प्रकृतियों के रूप में परिवर्तित करके भोग लेना - यह संक्रमण करण कहलाता है। यह संक्रमण भी कौनसे कर्मों का होता है? पूर्व में मैं बता गया हूं कि किसी समय प्रमादवश बांधे हुए अशुभ कर्म भी उच्च अध्यवसायों द्वारा शुभ बनाए जा सकते हैं। यह कर्मों की उद्वर्तना और अपवर्तना भी होती है।

कर्मों की फलदायक शक्ति और स्थिति को घटाना अपवर्तनाकरण है और कर्मों की स्थिति तथा रस विपाक शक्ति को बढ़ाना उद्वर्तनाकरण होता है। कर्म वन्ध चार प्रकार से होता है - प्रकृति बंध, स्थिति बंध, रस वंध, प्रदेश बंध - अपर्वतना द्वारा दीर्घ कर्म स्थिति को अल्पकालीन बना लिया जाता है। अनन्त काल की स्थिति अन्तमुर्हुत तक घटाई जा सकती है। उद्वर्तना तथा अपवर्तनाकरण के सहित दस प्रकार के करण बताए गए हैं। यहां मैं उन सबकी व्याख्या नहीं कर रहा हूँ। मूल बात हमारे समक्ष यह है कि पहले किए कर्म भी - यदि वे निकाचित कर्म नहीं हैं, तो उन्हें भी पुरुषार्थ के द्वारा बदला जा सकता है। प्रगाढ़ बंध कब होता है? जब तीव्रतम कषाय - क्रोध, मान, माया, लोभ होते हैं, उस समय निकाचित कर्म बन्ध जाते हैं। ऐसे निकाचित कर्म उदय आने पर फल दिए बिना नहीं रहते। निकाचित या प्रगाढ़ बंधे हुए कर्म कम ही होते हैं, ज्यादातर कर्म ऐसे होते हैं जो सामान्य प्रक्रिया से हल्के किए जा सकते हैं। उन्हें निकाचित कर्म नहीं कहते। वे पुरुषार्थ के द्वारा बदले जा सकते हैं। कर्म ग्रन्थ की भाषा में ऐसा पुरुषार्थ उदीरणा कहलाता है। उदीरणा के विषय को स्पष्ट करने के लिए भगवती सूत्र में एक उदाहरण आया है।

भगवती सूत्र में बताया है कि दीपक में रात भर जलने जितना तेल भरकर दीपक जलाया जाता है, उसमें एक बत्ती होती है जो धीरे- धीरे जलती है। क्रमशः दीपक का तेल समाप्त होता रहता है। यदि उसी दीपक में एक की बजाय दो बत्तियाँ लगा दी जाएं तो वह तेल जल्दी चुक जाएगा. और यदि चार बत्तियां उसी दीपक में लगा दे तो क्या होगा? एक बत्ती

की स्थिति में दीपक को तेल जितनी देर जलेगा, अब चार बत्तियाँ होने से वह एक चौथाई समय ही चलेगा। यदि सारे दीपक के तेल में एक दम ही आग लगा दें तो? कुछ मिनटों में ही सारा तेल जलकर समाप्त हो जाएगा। जो तेल रात भर दीपक को प्रज्जवलित रख सकता था वह जरा देर में ही पूरा हो जाएगा। लंबी अवधि कुछ ही मिनटों में समाप्त हो जाएगी। ठीक इसी प्रकार ज्ञानीजन कहते हैं कि जो कर्म एक हजार वर्ष बाद उदय में आने वाला है, उसे अध्यवसायों की उच्च धारा द्वारा शीघ्र उदय में ले आना संभव है। यह विषय थोड़ा सूक्ष्म है - गहन है। यदि अपवर्तना - उदवर्तना आदि करणों का ही विश्लेषण करने लग जाएँ तो बहुत समय चाहिए।

कर्मों के मूल भेद कितने हैं? आठ हैं और उत्तर प्रकृतियाँ कितनी हैं? एक सौ अड़तालीस हैं - अपेक्षा से एक सौ अंठ्ठावन भी हैं, लेकिन छठा कर्मग्रन्थ पढ़ चुकने वाले को पता होगा कि इन 148 या 158 कर्म प्रकृतियों के कितने भाँगे हैं? कितने हैं? लाखों - करोड़ों भांगे बन जाते हैं। एक एक कर्म - प्रकृति का दूसरी कर्म प्रकृति के साथ बंध, उदय - उदीरणा और सत्ता - प्रत्येक के साथ अलग - अलग भांगे बनाए गए हैं। लाखों भाँगे बन जाते हैं। बड़ा सूक्ष्म विषय है यह! मैं बात यह बता रहा हूँ कि हमारा भाग्य हम अपने हाथ से बना सकते हैं। पहले जो बना वह भी हमने स्वयं बनाया और भविष्य का भी खुद ही बना रहे हैं। इसके लिए पुरुषार्थ की विशेष अपेक्षा है। अच्छा भाग्य सभी चाहते हैं, लेकिन उसके लिए पुरुषार्थ भी वैसा करते हैं क्या? प्रत्येक व्यक्ति चाहता है कि मेरा भाग्य अच्छा रहे हर समय सौभाग्य का उदय रहे लेकिन कार्य

सारे कैसे हो रहे हैं? कार्य तो दुर्भाग्य को बढ़ाने के कर रहे हो और कामना सौभाग्य की करते हो। इसीलिए विद्वज्जन कहते हैं :

फलं इच्छंति पुण्याणां पुण्यं न कुर्वन्ति मानवाः।
फलं नेच्छंति पापानां पापं कुर्वन्ति मानवाः।।

कभी सोचा? निरन्तर पाप क्रिया में लगे रहो और पुण्य का उदय चाहो तो कैसे होगा? पुण्य के फल की इच्छा करते जरूर हो, लेकिन पुण्य के कार्य नहीं करते हो और पापकारी कार्य करते हुए भी उनका फल भोगना नहीं चाहते हो। इस प्रकार का विरोधाभास लेकर क्या कभी संतुष्टि और शांति पाई जा सकती है? यह जरा विचारने का प्रश्न है, बंधुओं! चौबीसों घंटे सुख से रहने की भावना बनी रहती है, तो फिर आरम्भ - समारम्भ के कार्य क्यों करते हो उस समय विचार नहीं आता कि पाप का बंधन करने वाले कार्य करके सुख कैसे मिल सकता है? सभी की यह इच्छा रहती है कि हमेशा हमारे पुण्य का उदय होता रहे, पाप का उदय कभी आये ही नहीं। जरा विचार करके देखिए कि पापकारी कर्म बने कैसे? जब पहले भव में कभी इस प्रकार के कर्म किए होंगे तभी तो वे उदयावस्था आने पर सामने आए हैं, लेकिन वह खोटी कमाई हंस - हंस कर कर तो ली अब भोगने के समय रोना पड़ता है।

पहले मारवाड़ के लोग कलकत्ता - मद्रास - बंबई वगैरह दूर-दूर के स्थानों पर चले जाते थे। छः आठ महीने वहां रहते थे, कमाई करते थे। इसे परदेश बोलते थे। वहाँ जाते, धन कमाते और फिर अपने क्षेत्र में लौट आते थे। बाकी के चार महीने मौज से खाते। जो वहां 8 महीने जमा कर लाए हैं, उसे बैठे - बैठे खाते। यहां भी हम सभी पहली

कमाई हुई पूँजी खा रहे हैं। मेघराज जी, खा रहे हो कि नहीं? रात बात कर रहे थे कि पिता ने कमाया नहीं, हमने भी कुछ नहीं कमाया और दादा की अर्जित पूंजी को मौज से खा रहे हैं। मूल जी ने कहा - ''पूर्वजों का माल -'सोना - चांदी पड़ा है, उसे खा रहे हैं।'' यह तो बंधुओं, लाक्षणिक बात हैं। सोना कहीं खाया जाता है? उपनिषदों में कहा गया है :- घृतं वै प्राणा: अन्नं वै प्राणा:।

यहाँ भी लाक्षणिक बात कही गई है। अन्न से, घी से पुष्टि होती है। अन्न प्राण नहीं हैं, घी प्राण नहीं है - बल्कि अन्न से और घी से प्राणों का पोषण होता है। प्राण की तरह अन्न-घी खाया नहीं जाता, उनसे प्राण बन जाता है। इसी प्रकार सोना खाया नहीं जाता, अपितु सोने के द्वारा जीवन चलता है। ये जो सुख मिल रहे हैं, यह पहले की जोड़ी हुई कमाई है। अब आगे के लिए क्या विचार है? समझदार पुरुप यही सोचता है कि बुढ़ापे के लिए कुछ साधन कर लिया जाए। यहां तो सुख भोग रहे हो, आगे के भव के थोड़ा - बहुत साधन करने की भी सोचो। विरले व्यक्ति ही इस विषय में सोच पाते हैं।

जीवन - परिवर्तन :

एक सेठ और एक सेठांनी का छोटा-सा परिवार था। दोनों के जीवन में सारे सुख होते हुए भी थोड़ा पारस्परिक मतभेद था। सेठानी बड़ी धार्मिक प्रवृति की थी। वह स्थानक जाती, धर्म ध्यान करती। संत संतियों के दर्शन का लाभ लेती - जबकि सेठ उसके विल्कुल विपरीत था। वह कभी भी सत्संग में नहीं जाता था। सेठानी धर्म स्थान की बातें करती थी तो वह क्लब की बातें बताता। सेठानी उसकी बातों से चिढ़ती थी।

प्रायः उसे धर्म साधना के लिए प्रेरणा दिया करती और सेठ इस सबको आडंबर कहा करता। वह सेठानी को क्लब चलने के लिए कहता और सेठानी स्थानक में जाने के लिए बराबर उससे आग्रह करती थी। दोनों का जीवन इसी प्रकार चल रहा था। सेठानी प्रायः सोचती - "मेरे पति मुझसे कितना स्नेह करते हैं। घर में खाने - पहनने की कोई कमी नहीं है। हर एक वस्तु का आराम है। मेरा कितना ध्यान रखते हैं, लेकिन उनका जीवन भौतिकता में ग्रस्त है। मैं उनकी अर्द्धांगिनी हूं। मेरे पति का जीवन भी किसी प्रकार धर्ममय बन सके तो कितना अच्छा हो। वह अपने पति को खूब समझाती, लेकिन वह धर्म के पथ पर प्रेरित नहीं होता था। एक बार सेठानी ने काफी सोच विचार किया और एक दिन अपने पति से वह बोली - "बहुत विद्वान् मुनिराज हमारे नगर में विराज रहे हैं। आप एक बार उनके दर्शन करने मेरे साथ चलिए। उस दिन सेठ को अच्छे मूड में देखकर सेठानी ने अपनी बात कह दी। सेठ ने कहा - "ठीक है, आज तेरी बात मान लूंगा, लेकिन एक शर्त है मैं स्थानक में सबसे पीछे बैठूंगा। कभी तो मैं जाता नहीं, यदि आज आगे बैठूँगा, तो सभी मुझे देखेंगे। मेरी हँसी उड़ायेंगे। पीछे बैठूँगा तो किसी को पता चलेगा किसी को नहीं चलेगा।" सेठानी ने कहा - "मुझे आपकी बात मंजूर है। आप तो बस चलो।" सेठ जी स्थानक गए। सेठानी ने नित्य की भांति सामायिक ली। सेठ जी पीछे जाकर बैठ गए। प्रवचन के समय पर मुनि श्री जी ने देखा कि कोई नए सज्जन आए हैं - अपरिचित सेठ जी आए हैं। एक-दो प्रश्न भी पूछ लिए। विषय भी संयोग से ऐसा ही चल पड़ा कि अर्थ की क्या स्थिति है। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष - इन की विवेचना चल पड़ी। इन चारों

में धर्म और मोक्ष तो उपादेय हैं और साध्य हैं तथा अर्थ और काम हेय हैं। अर्थ और काम को आत्मा के शत्रु कहा गया है। सबसे अधिक बड़ा शत्रु काम को माना है। काम तो कोठे में घुसा रहता है। दो क्षण के लिए प्रकट होता है, उसी में बर्बादी कर देता है, किन्तु अर्थ तो चौबीसों घंटे, बैठते-उठते, सोते-जागते पीछे लगा रहता है। हर समय पैसे की कल्पना लगी रहती है। इसी में व्यक्ति बैचेन बना रहता है। अर्थ को यदि सही ढंग से सदुपयोग में लाया जाए तो यह घोर शत्रु भी मित्र बन जाता है। अर्थ से ठीक-ठीक काम लेना सीख लो तो यह दोस्त है वरना महान् दुश्मन है। अर्थ पर गहराई से विवेचन किया जाना चाहिए। यही संसार में स्वार्थीपन का पोषक है। जब तक सबको स्वार्थ सिद्धि होती है, सारे सम्बन्धी अपने बने रहते हैं, किंतु जब उनको अर्थ की ओर से निराशा दिखाई देने लगती है, वे सभी पराए बन जाते हैं। अर्थ प्राप्ति के लिए व्यक्ति घोरतम पाप करते हैं, किन्तु वही धन अनेक पापों को बढ़ाता हुआ बंधन का हेतु बनता है। अन्त समय पर साथ नहीं जाता है।

यदि पापानुबन्धी पुण्य बनकर आता है, तो वह सदा दुःखदायी ही होता है। प्रत्यक्ष में ऐसा न भी लगे, लेकिन वास्तविकता यही है।

सेठजी ने वहां प्रवचन में बैठे-बैठे यह सारा विवेचन सुना। यह बात उनके हृदय तक उतरती चली गई। कुछ ही देर में उनके चेहरे की रेखाएं परिवर्तित होने लगीं। सेठ का चिन्तन चला - "म.सा. ठीक ही तो फरमा रहे हैं। मैं रात-दिन धन के ही पीछे दौड़ रहा हूं। मुझे धनार्जन से ही फुर्सत नहीं मिलती। मानव तन के महत्त्व को समझने का मुझे समय ही नहीं है। संसार में चारों तरफ स्वार्थ का जाल फैला है। आत्मा की सच्ची उपलब्धि तो वास्तव में सत्संग में आने से ही होती है।"

वन्धुओं, वह सेठ प्रथम बार ही प्रवचन सुन रहा हैं। पहले ही दिन उपाश्रय गया और उसके चिंतन की दिशा बदल गई। आप कब से सुन रहे हो? बदला क्या कुछ? मंदिर के कबूतर कहें अथवा चिकने घड़े कह दें - कोई असर नहीं पड़ता। पक्के हो गए हो। यदि एक घड़ा नल के नीचे रखा हो। नल खोलकर उस पर लगातार पानी डालें, लेकिन घड़ा खाली ही रहे। क्या कारण है कि घड़े में पानी नहीं जाता? समझ आता है कुछ? अरे, घड़ा उल्टा रखा है इसी से जो भी पानी उस पर गिर रहा है, वह सब व्यर्थ हो रहा है। सीधा रखा हो तो उसमें थोड़ा-बहुत पानी जाए भी! 2-4 बूंद पानी तो चला ही जाए, किन्तु घड़ा उल्टा होने पर तो खाली ही रहेगा। सेठ के मन में अर्थ यानि धन - दौलत के प्रति दृष्टिकोण बदलने लगा। सेठानी भी अपने पति के बदलते मनोभावों को लक्ष्य कर रही थी। व्याख्यान पूरा हुआ तो सेठ उठा। सेठानी भी सामायिक पार कर वाहर आई उसकी मुराद पूरी होती लग रही थी। सेठ जी के मन में धर्म का थोड़ा प्रभाव होता हुआ जान पड़ रहा था। सेठ-सेठानी घर की ओर चले। रास्ते में सेठानी ने अपने पति से कहा - "अपना अमुक परिचित बीमार है, सामने ही अस्पताल है। यहां तक आए हैं तो उसका हाल पूछते चलें। साता पूछते चले।" सेठानी का उद्देश्य तो कुछ और ही था। सेठ को लेकर जव सेठानी अस्पताल में प्रविष्ट हुई तो सामने ही कैंसर का वार्ड था। वहां की स्थिति वड़ी दयनीय थी। चारों ओर तड़फड़ाहट का वातावरण था। शायद आपने कभी देखा हो, अस्पतालों में किस प्रकार का करुण दृश्य होता है। हम छत्तीसगढ़ में थे। वहां के लोग अस्पताल को कसाईखाना वोलते हैं। महावीर जी धारीवाल के

लड़के गौतम धारीवाल का आपरेशन हुआ तो डॉक्टरों ने लापरवाही से रबड़ की नली अंदर ही छोड़ दी। ऊपर से टाँके लगा दिए। नली अंदर ही है। अब क्या स्थिति बनेगी, सोचो आप। डॉक्टरों को क्या चिन्ता, मरीज मरे या जिए। ऐसे निर्दयी डॉक्टर हैं, इसी से वहां तो कसाईखाना बोलते हैं। अस्पताल में चारों तरफ हाय- हाय, चीख - पुकार मची रहती है। चारों और कष्ट से पीड़ित लोग छटपटाते रहते हैं। ऐसे वातावरण में वह सेठानी सेठ को ले गई। किसी से उसने पूछा - "भाई तुम को क्या तकलीफ है?" उसने बताया - "मुझे कैंसर है।" किसी के गले का आपरेशन हुआ था। वह बोलने से भी लाचार था। उसके पास बैठे व्यक्ति से पता चला - "यह बहुत शराब पीता था, गले में कैंसर हो गया।" इस प्रकार चार-छः व्यक्तियों से पूछ लिया। सेठ जी क्लबों की संस्कृति में रहते थे। वहां तो इस प्रकार के दुर्व्यसन खूब चलते हैं। सेठानी का उद्देश्य सेठ को यहां लाने का एक मात्र यही था कि क्लब की संस्कृति का कुप्रभाव स्पष्ट हो सके। सेठ को शराब - सिगरेट की ह। ँ बताना ही उसका ध्येय था। वह उसने बता दिया।

सेठ जी घर आए। आते समय रास्ते भर उनका चिंतन चलता रहा। आते ही सेठानी के चरण पकड़ लिए - "तू मेरी गुरु है। मैं भटक रहा था, तूने मुझे सही रास्ते पर ला दिया। आज मुझे धर्म का तंत्व समझ में आया है। आत्मा का मर्म समझ में आया है। अपने से श्रेष्ठ मैंने किसी दूसरे को माना ही नहीं। आज मुझे ज्ञात हुआ कि धन में ही लिप्त रहकर मैंने अपने चारों ओर स्वार्थी लोगों की फौज इकट्ठी की है। अपने लिए मैंने आज तक कुछ नहीं किया। आज मेरी दृष्टि खुल गई है।"

बन्धुओं, सेठ का जीवन बदल गया। उसकी दिन चर्या धर्ममय बन गई, जिस व्यक्ति को प्रतिबोध हो जाता है, वह एकझटके से खुद को बदल लेता है। आप सुख विपाक सूत्र का वर्णन सुन रहे हो। सुबाहु कुमार ने राजसी वैभव में रहते हुए भी अपने जीवन का परिष्कार कर लिया। वह श्रावक व्रत अंगीकार करता है।

सुखविपाक सूत्र का प्रसंग :

सुबाहु कुमार एक के बाद एक व्रत ग्रहण कर रहा है। आपने सुना कि उसने अहिंसाव्रत, सत्यव्रत और अचौर्यव्रत स्वीकार किया। जीवन भर तक के लिए हिंसा, असत्य और चोरी का दो कारण तीन योग से त्याग किया। चोरी क्यों होती है? इस संदर्भ में मैं चोरी के अनेक कारण और अनेकों प्रकार के तरीके बता गया था। चोरी के तरीकों में आजकल विज्ञापन बाजीं भी आती हैं। ऐसे - ऐसे विज्ञापन निकलते हैं कि माल तो कुछ नहीं बेचा और लाखों रुपये कमा लिए। आपको आश्चर्य हो रहा है? एक व्यक्ति ने विज्ञापन निकाला - "भोजन करते समय मक्खियों को न आने देने का बढ़िया उपाय जानने के लिए चार पैसे का टिकट और पोस्टकार्ड भेजो। पोस्टकार्ड जवाबी हो। मैं मक्खियाँ भगाने का नुस्खा आपके पते पर भेज दूँगा। उस समय एक पैसे में पोस्टकार्ड आता था। चार पैसे का एक आना होता था। बहुत से लोगो ने एक-एक आने के टिकट भेजे। अपना लगा हुआ जवाबी पोस्टकार्ड भेजा। एक तरफ लिखा - "हम मक्खियों से बहुत परेशान हैं। चार पैसे का टिकट भेज रहे हैं। आप जल्दी से मक्खियाँ भगाने का उपाय भेजो।" हजारों टिकट उसके पास इकट्ठे हो गए। उसने सब पोस्टकार्डों पर एक ही बात छपाई

और पोस्ट कर दिए। वह क्या छपाया - " भोजन करते समय मक्खियाँ परेशान न करें, इसका सीधा सरल उपाय है कि एक हाथ हिलाते रहो, मक्खियाँ नहीं आयेगी।" सबके टिकिटों के उसने पैसे बनाए हजम कर गया। इस प्रकार की सभ्य चोरियाँ चलती है। अनपढ़ लोग समझते नहीं हैं। गाँवों में क्या होता है? साहूकार ने 100 रुपये किसी किसान को उधार दिए। अंगूठा लगवा लिया और पीछे से एक बिंदी बढ़ा दी। सौ रुपयों पर बिंदी बढ़ा दी तो क्या हो गया? एक हजार हो गया। अब उसे एक हजार देने पड़ेंगे, क्योंकि उसका अंगूठा लगा है। एक बिंदी का क्या फर्क पड़ा? लूट लिया मजे से उस बेचारे अनपढ़ किसान को!

बहुत से व्यक्ति धर्मार्थ संस्थाओं के चन्दे हजम कर जाते हैं। कभी पूरा चंदा, कभी आधा मजे से पचा लेते हैं। ये सारी सभ्य चोरियाँ हैं। ऐसी चोरियाँ बहुत होती हैं। इस प्रकार की चोरियों के अनेकों प्रकार हैं। शास्त्रीय दृष्टिकोण से द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव - ये चार प्रकार बताए हैं। द्रव्य, क्षेत्र और काल की बात तो मैं कल बता भी गया था। भाव चोरी क्या? किसी के विचारों की चोरी- शब्द की चोरी भाव चोरी कहलाती है। शास्त्र में कहा है:

तवतेण, वयतेण, रूवतेण य जेनरे।
आयार भावतेण य कुव्वह देव किव्विसं।।

तप की चोरी, वचन की चोरी, रूप की चोरी और आचार आदि की चोरियाँ भी होती हैं व किल्विषी देवता में जन्म लेते हैं। साधु बनकर भी चोरी की जा सकती है। तप की चोरी क्या? नाम तो तपस्या का हो, लेकिन तपस्या न कर खाये - पीये तो वह तप की चोरी हुई। मान लो

कोई दो संत यहां हों। एक तपस्वी जी म.सा. हैं। उनके साथ दूसरा सहयोगी संत दुबला - पतला हो? जो भी दर्शनार्थी आएँ वह उसकी कृश काया देखकर उसे ही 'तपस्वी जी तपस्वी जी' कह कर वंदना करे। सुख साता पूछे। तपस्या नहीं की लेकिन फिर भी वह सुख साता पुछवा रहा है। पूछने वालों को वह कुछ नहीं कहता। मना भी नहीं करता कि मैंने तपस्या नहीं की है। साधु को तो वैसे भी तपस्वी कह देते हैं। इस प्रकार झूठे दम्भाचरण द्वारा तप की चोरी होती है।

वय की चोरी होती है - अपनी उम्र या दीक्षा पयार्य कम ज्यादा बताना। अपना प्रभाव जमाने को अथवा किसी दूसरे से स्वयं को श्रेष्ठ व ज्ञानवान सिद्ध करने को ऐसा आचरण होता है। ऐसे ही वचन की चोरी का क्या अर्थ है? दूसरे की रचना या साहित्य को अपने नाम से छपा लेना - यह वचन की चोरी है। किसी के विचार चुराए एक पुस्तक बना दी। अपना कुछ नहीं - खुद लेखक नहीं हैं लेकिन नाम उस पर अपना दे दिया। हाँ, सम्पादन करें तो बात अलग है। वहां सम्पादक के रूप में नाम आ सकता है। वह चोरी नहीं है लेकिन केवल नाम बदल कर किसी दूसरे की पुस्तक अपने नाम से छपा लेना - यह तो अपराध है, चोरी है।

नाम बदल कर पुस्तक छपाना :

मेरी एक पुस्तक है 'आत्महत्या'। वह कलकत्ता से छपी थी, लेकिन भूल से उस पर प्रकाशक और प्रेस का नाम छपने से रह गया। लेखक का नाम तो छपा था 'शांति मुनि', किंतु प्रकाशक का भी नहीं और कौनसे प्रेस में छपी है, यह भी नहीं छपा था। ब्यावर का एक व्यक्ति उस पुस्तक की कापी करके - रजिस्टर में पूरी उसे लिखकर श्रमण संघ

के संतों के पास गया। जाकर बोला - ''यह पुस्तक मैंने लिखी है। आप अपने नाम से इसे छपवा लें मुझे इसके इतने हजार पारिश्रमिक के दिला दें।''मुझे वे संत रतलाम में मिले। उन्होंने मुझे बताया - ''म.सा. इस तरह से एक व्यक्ति हमारे पास आया था। हमने तब तक आपकी वह पुस्तक देखी नहीं थी। बाद में पढ़ी तो पता लगा कि वह पुस्तक असल में आपकी लिखी हुई है। हमारे पास इस तरह से उसकी पांडुलिपि आई थी।'' मैंने पूछा - ''ऐसा व्यक्ति कौन है।'' मुझे बताया गया कि वह ब्यावर का है लेकिन अपने घर से प्रायः फरार ही रहता है। मुझे वह पांडुलिपि भी बताई। मैंने कहा - ''यह तो मेरी पुस्तक है। कभी की छप चुकी ये तो।

बन्धुओं, आपको क्या बताएँ संत भी इस प्रकार से दूसरों द्वारा लिखी पुस्तकें अपने नाम से छपवा लेते हैं। कर्म ग्रन्थ बहुत से विद्वान् लिख देते हैं और नाम संतों का हो जाता है। किसको इतनी फुर्सत रखी है कि छान-बीन करे किसने लिखी है! इसे वयतेण कहा है। एक होती है, रूप की चोरी। रूपस्वरूप भिन्न - भिन्न बताना। विचारों और भावों की बहिरंग एकरुपता का न होना। अंदर में कुछ हो बाहर में कुछ बतायें। साधना का ध्येय कुछ और हो और दिखलावा और ही प्रकार का करें। यह आचार की चोरी है। इस प्रकार से चोरी कई तरह की होती है। चोरी का कारण क्या? ज्यादातर चोरी इसलिए होती है कि उनके पीछे बेकारी, भुखमरी आदि के कारण होते हैं। खाने को नहीं हो, बेकार घूम रहे हों तो चोरी सूझती है। दूसरे और भी कारण हो सकते हैं लेकिन मुख्य यही हैं। कई बार भूखे भी नहीं होते मगर फिर भी चोरी करते हैं इसके पीछे आकांक्षा की अतृप्ति होती है। खाने को पर्याप्त है, फिर भी चोरी

किसलिए? आकांक्षा की निस्सीमता के कारण! तीव्र तृष्णा पूरी नहीं होती, तभी चोरी करते हैं। दुर्व्यसनों के कारण भी चोरी होती है। कोई व्यक्ति जुआ - सट्टा खेलता हो तो चोरी करना पड़े। शराब पीने की आदत हो, भाँग - अफीम का दुर्व्यसन हो तब भी समय पर न मिलने पर चोरी करने का उपाय शेष बचता है। वेश्यागमन - माँस भक्षण महाण भी ऐसे ही दुर्गुण । हैं जो चोरी करने के लिए बाध्य कर देते हैं। इन कुव्यसनों में धन समाप्त हो जाता है, व्यक्ति खाली हो जाता है। पहले तो घर का धन लुटाता है। जब वह समाप्त हो जाता है तो घर में चोरी शुरू करता है। पहले - पहल घर की चोरी करता है फिर बाहर की भी शुरू कर देता है। ऐसा करते - 2 पक्का चोर बन जाता है। यश - प्रतिष्ठा की भूख भी चोरी का कारण बन जाती है। 'मेरे नाम की प्लेट लगें', 'अखबारों में मेरा नाम आए' यह आकांक्षा भी व्यक्ति को नैतिकता के पथ से भटका देती है। चोरी का एक मूल कारण फिजूलखर्ची भी है। आजकल फिजूलखर्ची बहुत बढ़ गई है। लोग निरर्थक खर्च करते हैं। ब्याह-शादी में हजारों लुटा देते हैं। प्रतिस्पर्धा के कारण धन का अपव्यय किया जाता हैं। इतना धन लाएँ कहाँ से? चोरी नहीं करें तो यह सब प्रदर्शन कैसे करें? लोग कहते हैं चोरी इसलिए करनी पड़ती है कि हमें अफसरों को रिश्वत देनी पड़ती है - अफसरों को खुश करना पड़ता है। किसी ने चार रुपये चुरा लिए तो क्या करते हो? उसे पुलिस में दे देते हो। चार रुपये चुराने वाले को पकड़वा देते हो और जो अफसर 2,000 या 4,000 रुपये रिश्वत ले लेता है, वह क्या चोर नहीं है? उसे

कौन पकड़े ? यानि छोटे चोरों के लिए कार्यवाही है, मगर बड़े चोरों के लिए कोई कार्यवाही नहीं है। आजकल तो मजिस्ट्रेट भी चोर हैं। कहते हैं :

कोई छोटा चोर कोई बड़ा चोर।
इस दुनिया में सब चोर - चोर।।

एक प्रसंग बना। एक चोर किसी घर में चोरी करने को घुसा। उसने सारे कीमती सामान की गठरी बांध ली और उसे उठाकर चलने का ही था कि पीछे से एक दूसरे चोर ने आकर उसकी पीठ पर हाथ रख दिया। वह चोर तो एक दम डर गया। सोचा - ''घर का मालिक आ गया है। अब मैं पकड़ा जाऊँगा।'' वह बड़ा घबराया। दूसरे चोर ने उसकी स्थिति समझ ली और उसके भय का लाभ उठाने की सोची। वह डपटकर बोला ''मेरे घर का माल लेकर कहां जाता है ?'' पहला चोर एकदम सिर पर पैर रखकर भागा। जब वह दूर चला गया तो दूसरे चोर ने माल की गठरी उठाई और आराम से चलता बना। बिना मेहनत किए उसे माल मिल गया। केवल उसे डराने से ही काम बन गया।

रिश्वत के धन्धें में क्या होता है। कुछ भी जुर्म कर लो। बड़े साहब की टेबिल के नीचे से नोटों की गड्डी उनको पकड़ा दो बस आपकी छुट्टी। इतनी बात जरूर है कि ऊपर से नहीं लेते हैं। मेज के नीचे से चुपचाप पकड़ लेते हैं। घर जाकर वही बड़े साहब चाहे भींगी बिल्ली बन जाएँ लेकिन उस समय तो नोटों के बल पर बड़े चोर छोटे चोर को छोड़ ही देते हैं।

अब आप देखिए। चोरी में अनर्थ माना है। चोरी का

अपराध किसे दिया जाए? आज प्रायः सब चोर हो गए। साहूकार कौन है? हमारे सामने तो चोर भी बन जाओगे। झट से खुद को चोर स्वीकार कर लेते हो। मन्दिर के कबूतर कह दें, चिकने घड़े कह दें या चोर कह दें सब स्वीकार कर लेते हो, लेकिन अगर कोई दूसरा चोर कह दे तो क्या कहो? उससे लड़ने लग जाओ - "अबे, कैसे मुझे चोर कहता है? तेरे बाप का क्या चुराया है?" हमारे कहने से तो खुद को चोर कह रहे हो।

पंजाब के विजय मुनि को आपने देखा तो नहीं होगा, लेकिन शायद नाम सुना होगा। लोग उन्हें जाट कहते हैं। जाट की तरह ही वे अड़ जाते हैं। वे हैं भी हरियाण के जाट। एक बार विहार करके कहीं ठहरने का प्रसंग आया तो वे बोले - "हम वहां नहीं ठहरते जहां लाइट, पानी की व्यवस्था नहीं होती है।" मेवाड़ में ही कहीं की बात है वे जा रहे थे कि किसी ने कह दिया - "ढूंड्या बेटा पक्का चोर।" यह सुनते ही उन्होंने उसका गला पकड़ा और जोर से बोले - "तेरे बाप का क्या चुराया है, बोल!" वह कहने वाला तो थर-थर काँपने लगा। वे ऐसे ही हैं। कहते हैं जहां लेट्रिन, बाथरूम, बिजली नहीं हो, वह वहाँ ठहरते ही नहीं है। उनके गुरु रणसिंह जी मुणक में थे। विजय मुनि वहां चले गये जहां बिजली का कनेक्शन नहीं था। वहां के लोग नल - बिजली लगाने ही नहीं देते। हमारा भी वहां एक बार ठहरने का प्रसंग आया। पास में धर्मशाला थी वहां पानी-बिजली सब थी। जहां उनके गुरुदेव होते हैं, वहां तो उनकी धौंस नहीं चलती, अन्यथा वे सबको रौब में ले लेते हैं। यह भी एक प्रकार की आचार - चोरी है। अचौर्यव्रत का बड़ा सूक्ष्म विश्लेषण है। अचौर्यव्रत स्वीकार करने वाला श्रावक सभी प्रकार की

चोरियों से खुद को बचाता है। वह जीवन भर किसी भी तरह की चोरी न करने की प्रतिज्ञा करता है। सुबाहु कुमार भी अचौर्य व्रत का सारा विवरण जानकर भेद - प्रभेदों सहित उसको समझता है और सारे जीवन के लिए वह व्रत अंगीकार करता है। आपके समक्ष श्रावकव्रतों का विश्लेपण यथा समय आ रहा है। आप भी उनको अपनी सामर्थ्य के अनुसार ग्रहण करेंगे तो आपका जीवन उज्जवल बनेगा। मानव जीवन ही मोक्ष की साधना करने का एकमात्र द्वार है। अपने अंतरंग की अनंत शक्तियों को पहचान कर आप जीवन के उच्चतम लक्ष्य के प्रति जागरूक बनें, यही हमारा ....

21 अक्टूबर, 1989

फिर देखिए उसकी बोली भी बदल जाती है। जब कुर्सी छिन जाएं या धन समाप्त हो जाए तो बोली फिर से बदल जाती है। कुर्सी बोलती है। अमीरी बोली - "तेरी क्या औकात है? तू तो इस धरती के लिए भारभूत है। मर जाए तो पृथ्वी का भार हल्का हो जाए।" कौन बोल रहा है? वह अमीरजादा अपनी रईसी शान में बेभान बना हुआ कह रहा था। फकीर ने यह सब सुना। उसने कोई उंत्तर नहीं दिया। उसकी ओर से उत्तर देता हुआ तेज आंधी का झोंका आया। रेत का बवंडर उठा। बालू अमीर की आंखों में घुस गई। बड़े वेग से छाता भी उड़ गया। अमीर का शरीर पसीने-पसीने हो गया। धूलि में लथपथ हो गया। ज्यों ही छाता उड़ा कि ऊँट भड़क गया। अमीर साहबजादे नौकर सहित नीचे आ गिरे। वहीं ढेर हो गया। अभी क्षण भर पहले तो अमीरी के गर्व में चूर क्या-क्या बोल गया था और अब उसकी क्या हालत बनी? पीछे से फकीर भी चलता हुआ आया। बोला - "अरे, यह क्या तमाशा हुआ?" उसने आगे बढ़कर एक जरा-सी ठोकर उस अमीर के निश्चेष्ट शरीर पर लगाई। बोला - "वाह री अमीरी, मेरे दोस्त को इतनी जल्दी उठा लिया।" उसकी अमीरी ने उसे सदा के लिए सुला दिया। कुछ देर पूर्व पंखे की हवा में भी गर्मी का अनुभव करने वाला उसका आराम तलव शरीर अब तपती हुई बालू पर पड़ा था। क्यों? उस शरीर का स्वामी अब उसमें से निकल चुका था। उसके नाजुक मिजाज स्वभाव के कारण वह शरीर को बहुत जल्दी छोड़ गया था। उधर वह फकीर जैसा मस्त पहले था, उसी प्रकार अब भी चला जा रहा था। वास्तव में जो आनंद फकीरी में है, वह अमीरी में नहीं है। कबीर जी कहते हैं -

मन लागो मेरो यार फकीरी में।

जो सुख पाऊँ राम भजन में, सो सुख नहीं अमीरी में,
भला बुरा सब को सुन लीजै, गर गुजरा न गरीबी में।।
प्रेम नगर में रहनि हमारी, भली बन आई सबूरी में,
हाथ में कूंडी बगल में सोटा, चारों दिशा जगीरी में।।
आखिर यह तन खाक मिलेगा, कहां फिरत मगरूरी में,
कहे कबीर सुनो भई साधो, साहिब मिले सबूरी में।।

कबीरदास जी क्या कह रहे हैं? अमीरी में कुछ नहीं मिलता। जो कुछ मिलता है वह त्याग में ही मिलता है। क्या मिला, चक्रवर्ती सम्राटों को? छः खंड की सिद्धि जिनके पास थी, वे भी उससे कुछ प्राप्त नहीं कर पाए। यदि उन्हें उस अमीरी से सुख मिल जाता तो वैभव का त्याग क्यों करते? कबीरदास जी कहते हैं कि जो कुछ मिलता है वह सबूरी में - फकीरी की मस्ती में आकर ही मिलता है। सबूरी कब आती है? जब सब तृष्णा - इच्छा समाप्त हो जाती है। कहा है :

चाह घटी चिन्ता मिटी, मनवा बेपरवाह।
जिनको कुछ न चाहिए, वे शाहों के शाह।।

जब चाह और आकांक्षा घट जाती है, तब मन भी बहुत निश्चिन्त हो जाता है। उस समय चिन्ता का लेश मात्र भी बाकी न रहने पर असीम आनंद की अनुभूति होती है। ऐसे इच्छा निरोधी व्यक्ति ही शाहों के शाह कहे जाते हैं। इस प्रकार यहां कहा जा रहा है कि अमीरी में आनंद नहीं, शान्ति नहीं। वह तो फकीरी में भी छिपा हुआ है। अपने को अकिंचन बना लो, तब सच्ची मस्ती आयेगी। मैं आपको बता रहा हूं कि अमीरी खुदा को- प्रभु को भी प्यारी होती है। आत्मा को सच्चा सुख फकीरी ही देती है। वह अलमस्त साधु मस्ती से पदचरण धरता

चला जा रहा था। उसे बाह्य जगत की - गर्मी और धूप की कुछ भी परवाह नहीं थी। वास्तव में बाहर की वस्तुओं को सब कुछ मान कर चलने वाले ही महान दुःखों से घिरे रहते हैं। अधिकांश समय व्यर्थ की चर्चा और चर्या में लगाने वालो को सच्ची शांति कहां है? ज्ञानीजन कहते हैं कि अक्षय सुख का भंडार तो त्याग में मिलेगा। जब फकीरी आती है जब चाहत समाप्त हो जाती है - इच्छाएं मिट जाती है तभी आनंद का स्रोत प्राप्त होता है। यूं तो तृष्णा का विस्तृत जाल फैला है। लंबी - चौड़ी माया की लालसाएँ पागल बनाने को संसार में बिखरी पड़ी हैं, लेकिन जो उसे हरा देते हैं, वही वीर के संबोधन से विभूषित किए जाते हैं। जब फकीरी आती है, तब सारी अमीरी बेकार लगने लगती है। कोई भी अमीर चाहे अरबपति भी हो उसके धन की भी एक सीमा है। टाटा - बिरला, डालमिया, मोदी - सभी अमीरों की कोई न कोई सीमा है, लेकिन फकीरी की कुछ सीमा है? 'हाथ में कुंडी बगल में सोटा' - यही तो फकीर की जागीर है। हम यों कह दें 'हाथ में झोली बगल में ओघा' चारों दिशा जगीरि मे - आप एक सीमा में बंधे हो। गांव में आपका एक घर है चाहे छोटा या वड़ा, कैसा भी एक परिवार है। आपके सम्बन्धी - रिश्तेदार हैं। एक दायरा है। जिसने तोड़ दिया, उसका क्या है? वह तो असीम हो गया! सीमा की कोई रेखा नहीं, बंधन का कोई चिन्ह तक नहीं। चारों दिशाएं ही जागीर बन गई तब फिर क्या बचा? संसार अपने कदमों तले रहता है। मैंने एक बार बताया था कि मेरे पैर की रेखा देखकर ज्योतिषी ने कहा था - ''तुम साधु कैसे बन गए तुम्हें तो वाहन में सवारी करनी चाहिए। तुम्हारे नीचे हर समय वाहन रहने का योग है। तुम्हें करोड़पति होना चाहिये।

मैंने कहा था - "मैं किसी से कम हूं क्या? करोड़पति मेरे चरणों में लौटते हैं।" बन्धुओं वह सम्मान हमारा नहीं, हमारे त्याग का है।

बात मैं कह रहा था कि तृष्णा के त्याग में व्यक्ति निस्सीम में प्रवेश कर जाता है। जितना ज्यादा वैभव होगा, उसे उतना ही अहंकार भी होगा। जिसके पास कुछ नहीं उसका क्या होगा? दायरा कब बनता है? जब कुछ होता है। जहां कुछ भी नहीं रहे, वहां कैसा गर्व - घमंड और कैसा दायरा? सच्ची शांति कब मिलती है? जब अमीरी उपेक्षित हो जाती है। आपके पास 24 घंटे का समय है। आत्मा के लिए कितना देते हो? एक सामायिक कुछ लोग कर लेते हैं और कुछ वह भी नहीं। वह भी कब, जब संत बार-बार प्रेरणा देते हैं, फोर्स करते हैं, तब कहीं मुश्किल से इतना भी समय निकलता है। बन्धुओं, आत्मा की ओर लौटना बहुत मुश्किल है। छत्तीस गढ़ से आज भी कुछ लोग आए हुए हैं। लिंक बराबर लग रहा है। अभी आपके सामने छोटा बच्चा महावीर बोल गया। संचेती परिवार तो यहां कई दिनों से है ही आज से धमदा वाले भी दर्शनार्थ आए हैं। छत्तीसगढ़ से कोई न कोई, कन्टीन्यू आ ही रहे हैं। कोई धमदा से, कोई रायपुर से, कोई भिलाई से रोज नम्बर लगा हुआ है। इनकी श्रद्धा भावना बहुत प्रशस्त है। खैर, मैं बता रहा था कि आपके पास संसार के कार्यों को करने का पर्याप्त समय है, लेकिन मूल जो आत्मरमणता का प्रश्न है, उसे विस्मृत किए रहते हैं। विभाव को सारा समय है स्वभाव को कितना है? है क्या? भाग दौड़ में कभी 5-10 मिनट निकल आये, बाकी के तो चौबीसों घंटे कर्म बंधन में लगा रखे हैं। सारे संसार के लिए समय है, शक्ति है, लेकिन स्वयं के लिए नहीं

है। जीवन का उद्देश्य कहां समझा? कुछ कला आई जीवन को जीने की? क्या कहें बंधुओं, आप कहेंगे कि महाराज को तो यही बातें हैं। हम क्या करें? हमारा दिल करता है कि जो दलदल में फंसे हैं उन्हें निकलने का मार्ग बता दें, लेकिन आप निकलना कहां चाहते हो? जीवन को उचित प्रकार से बिताने की कला बड़ी मुश्किल से आती है। यदि आ जाए तो फिर 23 घंटे आत्म साधना में बिताओ और एक घंटा सांसारिक वृतियों में लगे। आई क्या कला? आधी - अधूरी भी नहीं आई आधी भी आ जाए, तब भी बहुत अच्छा है, लेकिन यहां तो चवन्नी भर भी क्या एक पैसा भर भी नहीं दिख रही। बाहर में चौबीसों घन्टे लगाकर देख लिया। क्या पाया? मिली कुछ शांति? अब जरा 23 घंटे आत्म कल्याण की साधना में लगाकर देखो, कितना कुछ मिलता है? कुछ प्रयास करके तो देखो। सारी पूर्ति हो जाएगी। कितना भी बाहर में दौड़ लो संतोष नहीं मिलेगा। यहां जितना समय लगाओगे, उतनी ही निर्जरा होगी। कमाई को तो चोर ले जायेंगे। घरवाले हड़प लेंगे लेकिन धर्म की कमाई तो अखूट है। उसे कोई नहीं ले सकता। वह परभव में आपके साथ रहती है।

दुकान - व्यवसाय के कार्यों में जितने रचे - पचे रहते हो, उतने ही कर्म बंधन होते हैं। पूर्व में संचित पुण्य से तो इस जनम में सारे सुख प्राप्त हुए, लेकिन अब आगे के लिए क्या पाथेय संजोया? परभव के लिए क्या कुछ संचय किया? साधना करने से तो कर्म बंधन टूटेंगे लेकिन सांसारिक कार्यों में लगे रहने से प्रतिक्षण नए कर्म बढ़ेंगे। उपलब्धि । वहां से नहीं है बन्धुओं, उपलब्धि तो साधना में मन को लगाने से हैं। आप व्यापारी हो। व्यापारी सदा लाभ का ही सौदा करता है। आपको

प्रॉफिट का सौदा रोज बताते हैं, लेकिन वह आपके पल्ले नहीं पड़ता। धर्म का योग महापुरुषों की अनुकम्पा से मिलता है। अनंत-अनंत पुण्यफलों से सत्संग की प्राप्ति होती है। आप स्वयं ही बुद्धिमान है। बुद्धिमान को इशारा ही काफी होता है। जिसमें निर्जरा होती है, कर्म क्षय होता है वे कार्य आप नहीं कर रहे हो और कर्म बंधन के कार्य हंस - हंसकर कर लेते हो। इसे समझदारी किस प्रकार कहा जाए? हमारा तो यही संकेत है कि परभावों से मुड़कर आत्मा की ओर दृष्टिपात करने की चेष्टा की जाए, ताकि भव श्रृंखला का नाश हो सके और सच्चे अक्षय आनंद की प्राप्ति हो सके। जो पवित्र वीतरागवाणी को अपने हृदय में रमा लेंगे, उनका जीवन मंगलमय बनेगा। बहुत प्रयासों के बाद ऐसा समय आप सभी को मिल सका है, इसके महत्त्व को समझते हुए अधिकाधिक आत्म जागरण का प्रयत्न करें, यही हमारी आप सभी को उद्‌बोधना है ....

14 अक्टूबर, 89

कोई भी पाप होता है उसका तुरन्त पश्चाताप कर लो। आत्म-लोचना द्वारा उसे बाहर निकाल दो। यदि वह अन्दर में छिपा रहेगा तो विकार पैदा करेगा। सडांध पैदा करेगा। मुर्दे को यदि कमरे में बंद कर दे तो उसमें से क्या बाहर आएगा? बदबू और संडाध ही निकलेगी? उसी प्रकार एक पाप को छिपा कर रख लिया जाए तो वह अनेक पापों का हेतु बनेगा। आत्मा निरन्तर मलिन होती चली जाएगी।

2. प्रेरणा का स्रोत

(तर्ज :- होठों से छू लो तुम ....)

मेलववा परमानंद प्रभु शरणे हुं आव्यो।
संसार ना बंधन थी मन मारूँ घराब्युं।।

संसार ना विषयों थी निर्वेद हवे पायूं।
प्रभु चार कषायों ना दरिया ने हवे लागूं।।
वीतरागी थवा काजे चरणै दौड्यो आव्यो।।

विचरूँ प्रभु केम कहो, हूं आत्म समाधि माँ,
मन मारूं रूझाव्यो संसार नी व्याधि माँ।
अभिलाष प्रभु हूं तो संवेतगणी लाव्यो।।

निर्मल मारूं मन थाय एवो साधना पथ आयो,
पावन मारा मन माँ पोता नुं रूप दारवो।
प्रभु तारा दर्शन नी मन जिज्ञासा लाव्यो।।

विषयों नी आंधी माँ मन मारूं नरूं सावो,
ओ ममता बंधन थी उपराम हवे पामे।
पोतानी 'शान्ति' नी उज्जवल आशा लाव्यो।।

परतन्त्रता कर्मों की :

गीतिका के माध्यम से परमात्मा के चरणों में निवेदन प्रस्तुत किया गया है और अभयर्थना की गई है कि हे प्रभु में संसार के बंधनों

से घबरा गया हूं। भाषा गुजराती है लेकिन, भाव स्पष्ट है। गीतिका में साधक प्रभु से निवेदना कर रहा हैं कि हे मेरे अन्तर्देव मैं अनंत काल से रागद्वेष के बंधनों में बंधा हूं। मुझे इस रूप में कभी सुख प्राप्त नहीं हो सका। यह एक सामान्य-सा सिद्धान्त है कि जो व्यक्ति परतंत्र हो वह कभी सुखी नहीं हो सकता। सुख के लिए स्वतन्त्रता अपेक्षित है। यदि आप किसी के नौकर हो, किसी के मात हत हो - उस अवस्था में आप स्वाधीन नहीं हो। आप उस नियन्ता के बंधन में हो। परतन्त्र हो। आपको अपनी सारी इच्छाएं छोड़नी होगी। अपने नियन्ता, मालिकया प्रशासक की इच्छाओं के अनुसार चलना होगा। जहां किसी के अनुसार चलते हैं, वहां निज की सत्ता- निज की स्वतन्त्रता नहीं रहती। जहां परतन्त्रता है, वहां सुख नहीं मिलता। कहते हैं -

पराधीन सपने हुं सुख नाहिं।

इसी बात को गीतिका में कहा गया है कि हे प्रभु मैं जग की विषम ज्वालाओं में झुलस रहा हूं। इस जन्म मरण के अनवरत चक्र से मैं घबरा चुका हूं। मुझे परंम शांति की आवश्यकता है। वह परम शांति मुझे आप की शरण में आकर ही प्राप्त हो सकती है। बंधुओं, हम परमात्मा के द्वार पर क्यों जाते हैं? हम प्रार्थना क्यों करते हैं? मंदिरों, गुरूद्वारों गिरजाघरों में - धर्म स्थानों में क्यों जाते हैं? इसका उत्तर यह है कि हमारी आन्तरिक इच्छा आन्तरिक अभीप्सा शांति पाने की है। उसी शांति की उपलब्धि के लिए हम प्रभु की शरण में जाया करते हैं। परमात्मा के द्वार खटखटाया करते हैं, लेकिन जब तक हमारे भीतर में सच्ची प्यास जागृत नहीं अथवा दुःखों से मुक्ति के लिए तड़पन नहीं, तब तक हम परमात्मा की शरण में नहीं पहुंच सकते। कभी - कभी

आन्तरिक तड़पन के अभाव में हम परमात्मा के द्वार की बजाय किसी अन्य की ही शरण में पहुंच जाते हैं और फिर वह प्यास तृप्त नहीं होती, तो भगवान को दोष दिया करते हैं। बन्धुओं, एक बात आप निश्चित रूप से समझ लें कि परमात्मा की शरण में जाकर कोई भी खाली लौट नहीं सकता। वहां जाकर निश्चित ही दुःखों से मुक्ति मिल जाती है। जब हमारी लगन में कमी होती है, हमारे अध्यवसायों में पूर्ण उच्चता के भाव नहीं बन पाते, तभी तक अतृप्ति का अनुभव होता है। उस स्थिति में हम परतन्त्र जीवन बिताते रहते हैं।

स्वतन्त्रता दिवस की प्रेरणा :

आप स्वतन्त्रता दिवस मना लिया करते हैं। प्रति वर्ष याद कर लेते हैं कि हम स्वाधीन हैं, किन्तु क्या सचमुच हम ये बात सच्ची मान लें कि आज परतन्त्रता के बंधन कट चुके हैं? हम तो आज भी परतन्त्र ही हैं बंधुओं, क्योंकि हमारा अन्तर्मन गुलाम हैं। अन्तरंग की स्थिति का कभी अवलोकन करके देखें कि आप क्या हैं? तन से भी और मन से भी - दोनों प्रकार से पराधीन है। नहीं है क्या? हां, यदि मन आपके नियंत्रण में है तब तो मान ले कि आप स्वाधीन है, लेकिन वैसा है नहीं। मन के नियन्त्रण में आप हैं। स्वतन्त्रता दिवस को मनाने का भाव तभी सार्थक है, जबकि यह दिन सभी के मन में कर्म मुक्ति की प्रेरणा भर दे। मैं एक ऐसा ही प्रसंग आपको वता गया था मोहम्मद शाह रंगीले का, जो विषयों की परतन्त्रता में शरीर की स्वतन्त्रता - बाहरी स्वतन्त्रता भी खो बैठा था। नादि शाह ने आक्रमण करके उसे बंदी बनाया। कहते हैं। वहां नादिरशाह वाद में स्वाधीन कर दिया था और स्वाधीनता उत्सव मनाने

जलूस का आयोजन किया गया। उसमें हाथी को सजा कर नादिरशाह के समक्ष खड़ा किया गया। नादिरशाह से उस हाथी पर बैठने का आग्रह किया गया। नादिरशाह ने उस से पूर्व कभी हाथी देखा नहीं था। वह जानता नहीं था कि हाथी पर कैसे बैठा जाता है। वह आँखे फाड़ कर हाथी के भारी डील डौल को और उसके ऊपर बैठने वाले महावत को देख रहा था। महावत से नादिरशाह ने कहा - "इस घोड़े की लगाम मेरे हाथ में पकड़ा दे। तू नीचे उतर जा, तभी मैं बैठूँगा।" पीलवान ने - महावत ने बड़े अदब से सिर झुकाकर कहा - "हुजूर यह घोड़ा नहीं है। यह तो हाथी है। इसकी लगाम नहीं होती। इसको पीलवान चलाता है।" यह सुनकर नादिरशाह चौंकता है - "अरे, क्या बोलता है? इसकी लगाम नहीं होती?" नादिरशाह एक गरीब घर में पैदा हुआ था। उसका जीवन गरीबी में पला था, लेकिन वह उस अवस्था में दृढ़ परिश्रमी और स्वावलम्बी बन गया था। प्रत्येक कार्य को स्वयं करना उसकी विशेपता थी। शायद अपने इसी गुण से वह दुनिया का विजेता बना। जो काम खुद न कर सके, उसमें वह हाथ ही नहीं डालता था, वैसे नादिरशाह एक क्रूर शासक था। सेनापति भी वह बहुत अच्छा था। जलूस को विलम्ब हो रहा था और नादिरशाह अपने विचारों में लीन उसी प्रकार खड़ा था। हाथी पर बैठने में उसकी अन्तरात्मा साक्षी नहीं दे रही थी। महावत बार-बार आग्रह कर रहा था लेकिन वह बैठ नहीं रहा था। अन्त में उसने कहा - "मैं तो इसे खुद चलाऊंगा, तभी बैठूँगा।" उसे हाथी पर बैठाया गया, लेकिन वह बोला - "जिसकी लगाम मेरे हाथ में न हो मैं उसकी सवारी नहीं करता।" यह कह कर पुनः हाथी से नीचे कूद पड़ा। बोला - "किसी अन्य के आधार पर मैं नहीं रहना चाहता। तुम

इस घोड़े को उछलाओ, कुदाओ और मैं अवश-सा बैठा रहूं यह नहीं हो सकता। जिस घोड़े की लगाम अपने हाथ में न हो, मैं उस पर बैठना नहीं चाहता।''

बन्धुओं यह बात किसी रूप में बनी हो, लेकिन है सच्ची। इसका विश्लेषण करने पर पता लगता है कि यदि मन की लगाम अपने हाथ में रखें, तभी जीवन उचित प्रकार से बीते और सार्थक भी बने। प्रभु महावीर ने भी मन की उपमा घोड़े से दी है। उत्तराध्ययन सूत्र में प्रभु ने कहा है :

केसिमेवं बुवंतं तु, गोयमो इणमब्बवी।

मणो साहसिओ मीमो, दुट्ठस्सो परिधावई।

मन घोड़े की तरह तीव्रगति से भागने वाला है। इसे वश में रखने की आवश्यकता है। श्रुतज्ञान रूपी लगाम से मन रूपी अश्व को वश में करना चाहिए। यदि मन नियन्त्रण में न रह पायेगा तो अपनी इच्छानुसार दिशा में दौड़ेगा। उस स्थिति में मन के नियन्त्रण में रहने वाला सवार अर्थात् जीवात्मा स्वच्छन्द बने हुए मन के वश में कहीं भी चलायमान हो सकता है। वह स्वतन्त्र न रह पाएगा। उसकी स्वाधीनता मन का स्वेच्छाचार बन जाएगी। यदि मन के वश में आत्मा नहीं है अर्थात् यदि मन रूपी अश्व की लगाम आत्मा और बुद्धि के हाथ में है तो वह आत्मा स्वाधीनता का अखंड आनन्द उठायेगी। जहां स्वतन्त्रता है वहीं आनंद है - वहीं शान्ति है। आज के संदर्भ में न तो सुख - आनन्द है और न ही शान्ति है। चाहते सब हैं कि हमें अक्षय आनन्द का कोष उपलब्ध हो जाए, लेकिन हो नहीं पाता क्योंकि हमारी दृष्टि परतन्त्रता की अभ्यासी हो चुकी है। रागभाव- द्वेषभाव, ममता- मोह और अन्याय

कषाय विकारों के रहते हुए कोई भी व्यक्ति शान्ति को प्राप्त नहीं कर सकता। ममता के बंधन किस प्रकार बाँधे रहते हैं, इस संबंध में मैंने एक प्रसंग पढ़ा -

ममता के बंधन :

एक बहुत सम्पन्न सेठ था। उसकी पत्नी भी बड़ी सुशीला और पतिव्रता! सेठ - सेठानी के नैनों का तारा उनका एक सुन्दर- सलौना बेटा था। बेटा बड़े लाड़-प्यार में पला था। अपने माता-पिता की आँखों की ज्योति था वह। जब वह श्रेष्ठिपुत्र युवा हुआ तो उसके विवाह की चिन्ता सेठ-सेठानी को सताने लगी। 20 - 22 वर्ष की वय होने पर एक अच्छा घराना देखा गया और पुत्र की शादी कर दी। बहू भी बहुत सुयोग्य सुलक्षणा मिली। घर- भर में आनन्द का साम्राज्य छा गया। सेठ सेठानी फूले न समाते थे। एक दिन उनके सुख पर कुठाराघात करते हुए दुःख का आगमन हुआ। लड़के की शादी हुए दो महीने के लगभग ही बीते थे कि एक दिन उसके पेट में तीव्र शूल पीड़ा उठी। सेठ ने बहुत प्रकार से उपचार कराया। कोई भी डॉ. - वैद्य उसने न छोड़ा। प्रत्येक से परामर्श लिया। अपने पुत्र की रोगनिवृत्ति के सभी प्रयास किए, किन्तु भावी को कुछ और ही मंजूर था। लड़के की पीड़ा शान्त नहीं हुई। माँ-बाप अपने समक्ष ही लाडले पुत्र को तड़फड़ाते हुए देखते और आँखों में आंसू भर कर विवश खड़े रह जाते । आखिर लड़के ने उसी वेदना में तड़पते हुए प्राण त्याग दिए। दो मास विवाह को हुए - घर में नवविवाहिता पत्नी और पुत्र सब संसार को छोड़कर चल बसा। चारों तरफ इस अकाल मृत्यु से हाहाकार मच गया। जो सुनता, वही सेठ - सेठानी को सांत्वना देने चला आता। लड़का तो गया, लेकिन अपने

माँ-बाप और पत्नी के मन से वह जा न सका। वे स्वीकारने को तैयार ही न थे कि हमारा पुत्र मर गया है। पलंग पर गद्दे - तकिए बढ़िया रजाई रखी उस पर पुत्र को सुला दिया। किसे? पुत्र कहाँ था? वह तो अब मिट्टी थी, लेकिन मोह दशा में वे उसी को पुत्र मान रहे थे। उन्होंने सेठ को बताना चाहा कि अब यह तुम्हारा पुत्र नहीं रहा। अब तो यह उसका निर्जीव शरीर ही रह गया है। इसे भूमि पर लिटाया जाएगा, लेकिन सेठ-सेठानी की समझ में यह बात आती ही नहीं थी। वे बराबर रो रहे थे।

बंधुओं, एक प्राणी जाता है तो उसके साथ जुड़ा हुआ राग- भाव कितनों को रूलाता है। वैसे रोना -धोना भी कब तक किया जा सकता है? रोने में भी अपना - अपना स्वार्थ जुड़ा होता है। शरीर में से चैतन्य के निकल जाने पर रोना - धोना निरर्थक है। बंधुओं, बहुत बार रोना कृत्रिम भी होता है। गुजरात में हमने यह देखा कि रोने वाली स्त्रियाँ किराए पर लाई जाती है। बम्बई में भी यही होता है। यहां तो नहीं लाना पड़ता, बिना बुलाए ही आ जाती है रोने - रूलाने! क्या प्रथा है यह! आप जरा विचार कीजिए- जा तो रहे हैं सांत्वना देने लेकिन क्या करते हैं? दूर से ही दिखावटी रोना शुरू हो जाता है। घर में जो लोग हैं, उनको भी रोना पड़ता है। सचमुच रोना न भी आए तो भी झूठ ऊँ ऊँ करना पड़ता है। आप ही बताइये असली होता है वह रोना? यह रूढ़िवादिता है, गलत परम्परा है। मैं तो इसे मिथ्या ढोंग कहूंगा। हमारा प्रेम भी दिखावटी हो गया है और रोना भी दिखावटी बन गया है। रोते समय क्या - क्या बोलते हैं? आप सब भली प्रकार जानते हैं कि वास्तविकता क्या है? इसीलिये काफी दिनों तक रोने जाना

पड़ता है। ये सारी कुप्रथाएं हैं। रोना कभी स्वाभाविक आए, वह बात तो अलग है, लेकिन दिखावटी रोना रोएँ यह कुछ समझ में नहीं आता। पहले तो बहुत दिनों तक रोने की प्रथा थी अब कुछ कम होती जा रही है। कृत्रिम रोने का एक प्रसंग याद आ रहा है।

एक व्यक्ति मरा। उसके पीछे बहुत बड़ा परिवार था। जब उसको श्मशान ले गए तो पीछे औरतें रोती हुई जा रही थी कुछ दूर जाकर स्त्रियाँ वापस घर लौट जाती है, ऐसी कुछ परंपरा है। जब वे स्त्रियाँ रोती हुई चल रही थीं, तब एक स्त्री का पैर नाली में चला गया। इस पर सारी स्त्रियाँ जोर से हँस पड़ीं। रोती - रोती हंस पड़ीं। अब बताइये, वह रोना असली था? यह तो केवल रूढ़िवादिता है। जिस दिन परिवार का सदस्य मरे, उस दिन भी नकली रोना तो आप ही सोचो बारह दिन तक क्या असली हो सकता है? किसी के घर जायेंगी औरतें, बस में बातें करती हुई मजे से हंसती बतियाती हुई रहेंगी और उसके घर से एक दो फर्लांग दूर रही कि जोर - जोर से रोना - शुरू हो जाएगा। ढ़ोंग करना शुरू कर देगी। यह निरर्थक परंपरा है। इसका परित्याग होना चाहिए। जो यहां बैठी हैं उन्हें त्याग करा दूं कि नकली रोना नहीं रोना! किसी के घर मृत्यु हो जाए तो क्या करना? उसे धर्म तत्व समझाना।

मंगल पाठ सुनते हुए मंगलगमन :

सेठ लक्ष्मी चन्द जी धाड़ीवाल की बात बताऊँ मैं आपको। वे बीमार चल रहे थे। रायपुर का प्रसंग है यह। हम भी उधर थे। आचार्यश्री महासमुंद में विराज रहे थे। सेठजी को उपचार की दृष्टि से बाहर ले जा रहे थे। रेलवे का पूरा डिब्बा बुक करा रखा था। सभी तैयारी हो

चुकी थी। कमरे मे लोगों की भीड़ इकट्ठी थी। तभी सेठजी ने कहा - "सब बाहर जाओ, मुझे ध्यान करना है।" सब कमरे से बाहर चले गए। वहां पर केवल सेठानी जी रहीं। सेठ जी ने ध्यान किया। मंगल पाठ सुना। मंगल पाठ सुनते - सुनते ही मंगलगमन की तैयारी कर ली। सेठानी जी ने बाहर आकर सबको बताया कि सेठ जी तो परमधाम की यात्रा पर बढ़ चुके हैं अब सांसारिक यात्रा की उनको कोई आवश्यकता नहीं रही। स्टेशन पर सामान भी पहुँच चुका था, वह सामान बाद में मँगवाया गया। ऐसे सेठजी का मंगल पाठ सुनते हुए महा प्रयाण हुआ। वैसे वे सेठ जी बड़े उदार प्रकृति के थे। रायपुर में उन्होंने दानी के रूप में अच्छी ख्याति अर्जित की थी। सर्दी के दिनों में रात के समय कपड़े की गाँठे लेकर - कंबल लेकर चुपचाप सड़क पर निकल जाते थे। जो कोई सर्दी में ठिठुरता हुआ दिखाई देता, उसे चादर ओढ़ा देते। कई लोग फुट पाथों पर जाड़े में ठिठुरते पड़े रहते हैं। सेठजी उनको चादरें - कंबल ओढ़ा जाते। किसी को पता ही नहीं चलता कि कौन डाल गया। ऐसा गुप्तदान वे किया करते थे। एक बार एक इंस्पेक्टर रात की ड्यूटी पर था। वह घूमते - घूमते थक कर एक बेंच पर सो गया। रात में सेठ जी जब उस तरफ से गुजरे तो उन्होंने देखा कि एक व्यक्ति बिना कपड़ा ओढ़े सो रहा है। उन्होंने सोचा कोई गरीब है इसके पास कबंल नहीं है। यह सोचकर एक कंबल उसे ओढ़ा कर चले गए। अंधेरे में कुछ पता नहीं चला। सुबह जब वह इंस्पेक्टर उठा तो अपने ऊपर कंबल देखकर बड़ा हैरान हुआ। उसने पता लगाया कि ऐसा गुप्तदानी कौन है। कुछ लोगों के द्वारा उसे ज्ञात हुआ कि सेठ लक्ष्मी चन्द जी ऐसा ही गुप्त दान किया करते हैं। वह सेठजी की दुकान पर पहुंचा और कहा- "सेठ

जी आपके फोटोग्राफ लेने हैं।" सेठजी ने पूछा - "क्यों?" इंस्पेक्टर ने सारी बात बताई कहा - "आपके फोटो समाचार पत्रों में देकर लोगों को बताना है कि इस कलियुग में भी इस प्रकार की उदार प्रवृति वाले निःस्वार्थी दानी है।" सेठजी बोले-"अच्छा, यह बात है जरा ठहरो, मैं ऊपर होकर आता हूं। इतना कहकर ऊपर अपनी हवेली में चले गए। वहां से जाकर वापस ही नहीं आए। इंस्पेक्टर ने पुनः बुलाया तो नौकर से कहलवा दिया - "भाग जाओ, जब तक तुम चले नहीं जाते, तब तक मैं नीचे नहीं आऊँगा। मुझे कोई फोटो नहीं देना। मुझे अपना नाम नहीं कराना।" ऐसे थे वे सेठजी!

स्वर्गीय आचार्य गणेशाचार्य जी म.सा. का चातुर्मास जब बगड़ी में था संभवतः 2003 की बात है उस समय बहुत उग्र हैजा और प्लेग चला था। उस समय पं. अविकादत्त जी ओझा जो संत - सतियों को पढ़ाते थे, वे उस महामारी की चपेट में आ गए। सेठजी ने उनकी भी बहुत सेवा की और जो बाद में रहे, सेठ जी ने अपने हाथों से उनकी उल्टी-दस्त साफ की, उनके कपड़े धोए। लोग बहुत मना करते कि सेठ जी यह बीमारी छूत की है आप यह सब मत करो, लेकिन वे मानते नहीं थे। ऐसे सेवाभावी सेठजी थे उनकी मृत्यु कैसी हुई? हाथ जोड़े-जोड़े ध्यान में लीन थे और उसी उत्कृष्ट भावावस्था में उनके प्राण निकले। वे सेठानी जी भी कैसी थी? दूसरे दिन ही उनको आचार्य श्री के हड्डी फ्रेक्चर की सूचना मिली और खुद वे गाड़ी लेकर दर्शन करने पहुंच गई। सबने कहा - "आप अभी कैसे आ गई? 10 - 15 दिन तो रीति - रिवाज़ के अनुसार एक कोने में बैठना पड़ता है।"

सबको आश्चर्य हुआ। वे सेठानी जी क्या उत्तर देती है - "मैं तो उस समय भी नहीं रोईं न खुद रोने बैठी न किसी को रोने दिया। जो महिलाएँ आई, उनको स्पष्ट कह दिया यहां रोने - धोने का कोई काम नहीं, माला ले लो जाप करो। सबको एक - एक माला पकड़ा दी। किसी को रोने नहीं दिया। जो जीव गया वह तो अब लौटेगा नहीं। हम अपना कर्म बंधन भी क्यों करें। देखा आपने, कितनी प्रशस्त भावना थी उनकी! एक तो आर्तध्यान वैसे ही बुरा है - अशुभ है, कर्म बंधन का हेतु है और उस पर भी नकली रोना। वह तो और भी खराब है। इस दृष्टि से इन कुप्रथाओं को समाप्त करना चाहिए। आज बहनें कुछ कम दिखाई दे रही है दीवाली की सफाई में लगी होगी। बाहर की सफाई की ओर हम जितने प्रवृत्त होते हैं, यदि उतनी आन्तरिक सफाई की ओर ध्यान दे लें तो उद्धार ही हो जाए।

मैं आपको बता रहा था, सेठ के पुत्र की बात। वह लड़का मर जाता है और सेठ सेठानी उसकी पत्नी सब रो रहे हैं मोह और आसक्ति का बंधन ऐसा ही होता है। यद्यपि यह सब क्षणिक होता है। लेकिन फिर भी मोह का पाश दिखावा ज्यादा माँगता है या हम खुद करते हैं। दिखावे प्रदर्शन के बिना मोह अधूरा समझा जाता है। चाहे वह क्षणिक ही बन कर रह जाए। मैं जब पहले भदेसर आया था तब किसी ने मुझे बताया था। मेरा एक क्लासफेलो मित्र सोहन मेहता मर गया तो उसकी पत्नी उसके शव से चिपट - चिपट कर रोईं उठाने ही नहीं देती थी। अब क्या हाल है? सुनते हैं, उसने शादी कर ली है। कितने दिन हम स्वजन को स्मरण रखते हैं? कितना स्थायी होता है मोह?

अपना कोई प्रियजन चला गया - पत्नी मर गई उधर रोना- धोना हुआ, कुछ दिन बीते कि दूसरी शादी कर ली। रोना कितना समय रहता है? केवल कर्म बंधन कर लेते हैं। सेठ के घर भी वैसा ही वातावरण था। सेठ - सेठानी और बहू - तीनों रो रहे थे। पड़ौसी आए। समझाया - "यह तो जीव का स्वभाव है। जन्मा हुआ व्यक्ति मरता ही है। आपके ऊपर जरूर व्रज पात हुआ है, लेकिन अब तो धैर्य रखना ही होगा।" सेठ जी शान्त नहीं होते। उनकी पत्नी और पुत्रवधू भी सिसकती रही। उन्होंने अपने रोने में कुछ ध्यान नहीं दिया। पड़ौसी अरथी बनाने लगे। जब शव को अरथी पर लिटाने लगे तो सेठ जी एकदम चिल्लाए। रोते हुए बोले - "यह क्या कर रहे हो? मेरे बेटे को कहां ले जा रहे हो?" पड़ौसी बोले - "सेठ जी, धीरता धरिए। ले जाना तो पड़ेगा ही।" सेठ कहता है - "नहीं, नहीं मैं नहीं ले जाने दूंगा। मेरा प्रिय बेटा श्मशान में नहीं जा सकता।" लोगों ने समझाया- "अब तो यह निष्प्राण है। इसमें क्या रखा है अब?" सेठ बिलखते हुए कहता है - "भले ही कुछ नहीं है, मैं इस शरीर को ही देखता रहूंगा। अपने दुलारे बेटे का मुंह तो देखने को मिलेगा।" वह सेठानी भी इसी जिद पर अड़ गई कि पुत्र के शव को ले जाने नहीं देंगे। आखिर पड़ौसी क्या करते? वे बहुत समझाने पर भी जब उन्हें शव उठाने देने को राजी नहीं कर सके तो सभी उठकर अपने - अपने घर चले गए।

एक - दो दिन बीते। धीरे-धीरे शव में से बदबू आने लगी। कुछ लोग फिर आए। फिर समझाया - "सेठ, इस प्रकार व्यर्थ के मोह में क्या लाभ है? शव को दाह-संस्कार हेतु ले जाने दो।" इतने पर

भी सेठ न माना। शव का मुंह खुला रख छोड़ा था। उसे पलंग पर सुला रखा था। ऐसी आसक्ति कब पैदा होती है? जब व्यक्ति छोटे-से दायरे में बंध जाता है। यदि मेरापन हट गया तो फिर आसक्ति कहां रही? तब तो सारा संसार ही अपना बन जाता है। सारे संसार से अपनत्व होने पर किसी एक पर मोह - ममत्व नहीं रहता। उस सेठ ने हजारों की अरथी उठवाई होगी। अपने जीवन में कितनों को श्मशान घाट पहुंचाया होगा, लेकिन तब ऐसी बात नहीं हुई। अपने पुत्र के लिए जो मोह - ममता जगी, वह सबके साथ क्यों नहीं हुई, क्योंकि वहाँ अपनत्व का रिश्ता जुड़ा हुआ है। जब खुद का बेटा श्मशान में जाने लगा तो उठाने नहीं देता। इस प्रकार सात दिन बीत गए। शव में कीड़े पड़ गए। पलंग से नीचे सारे कमरे के फर्श पर वे कीड़े कुलबुलाने लगे। सब तरफ भंयकर बदबू फैल गई। दुर्गन्ध के कारण उस मुहल्ले के लोग घबरा उठे। सबने मिलकर एक मीटिंग की और सेठ के पास गए। सेठ से कहा- "तू तो मरेगा लेकिन अपने साथ सारे मुहल्ले को भी लेकर मरेगा। अरे, इस शव की भंयकर दुर्गन्ध के कारण प्लेग-हैजा फैल रहा है। अब तो शव में कीड़े भी पड़ गए हैं। इतने कीड़ों के साथ यदि इस शव को जलाएगा तो कितने जीवों की हिंसा होगी? अब भी कुछ समझ ले। शव को उठाने दे।" बन्धुओं, इतने पर भी वह सेठ शव को उठाने नहीं देता? दसवें दिन सभी पड़ोसी डंडे लेकर आ पहुँचे। सेठ से कहा - "मानता है या नहीं? या तो अब शव को ठिकाने लगा दे, वरना तेरी खोपड़ी तोड़ देंगे। तू सारे मुहल्ले का शत्रु बना हुआ है। कितने व्यक्ति हैजे से ग्रस्त हो चुके हैं। भंयकर बदबू यहाँ फैल रही है। खड़ा रहना

भी कठिन है। या तो इस लाश को बाहर निकाल दे वरना परिणाम अच्छा नहीं होगा।'' सेठ बोला - ''मैं कैसे उठाऊँ? हाथ लगाते ही कीड़े शरीर पर गिरते हैं।'' लोगों ने रोषयुक्त स्वर में कहा - ''इतने दिन से समझा रहे हैं। पहले ही मान लेता तो यह हालत नहीं बनती। अब हम क्या करें? कुछ भी कर इस लाश को हटा यहाँ से।'' सेठ ने एम्बुलेन्स बुलवाई एम्बुलेंस के ड्राइवर का भी भंयकर सड़ाँध से दिमाग चकराने लगा। वह बोला मैं तो इसे हाथ भी नहीं लगाऊँगा। लाश सड़ रही है। कीड़े कुलबुला रहे हैं मैं इसे नहीं उठाता।'' आखिर उसे कुछ पैसा देने का वायदा किया। बड़ी मुश्किल से वह तैयार हुआ। एम्बुलेंस में वह लाश श्मशान घाट पहुँचाई गई पैट्रोल आदि डालकर किसी प्रकार उसका दाह-संस्कार हुआ।

यह तो एक प्रसंग है बंधुओं, आप जरा सोचें कि यह मोह का साम्राज्य है। ज्ञानीजन कहते हैं कि पाप और आसक्तिमय हमारा शरीर है। बाहर प्रकट होने से पाप को जितना हम छिपायेंगे, वह अंदर में उतना ही सड़ता जाएगा। जब अंदर में कीड़े पड़ जायेंगे, तब क्या बाहर सड़ाँध नहीं फूटेगी? इसी से ज्ञानीजन कहते हैं कि कोई भी पाप होते ही उसका तुरन्त पश्चाताप कर लो। आत्मालोचना द्वारा उसे बाहर निकाल दो। यदि वह अंदर में छिपा रहेगा तो विकार पैदा करेगा। सड़ाँध पैदा करेगा। मुर्दे को यदि कमरे में वंद कर दें तो उसमें से क्या बाहर आएगी? बदबू और सडाँध ही निकलेगी। उसी प्रकार एक पाप को यदि छिपा कर रख लिया जाए तो वह अनेक पापों का हेतु बनेगा। आत्मा निरन्तर मलिन होती चली जाएगी और फिर कोई उसे सम्भालने

वाला भी नहीं मिलेगा, जिस प्रकार सेठ के पुत्र के शव को कोई उठाने वाला भी नहीं मिला।

जितने भी आसत् कर्म हैं – पाप कर्म हैं, उनसे बचने का प्रयास करें। सजग बनें, तभी आत्मा की सुरक्षा हो सकती है। जब पाप कर्म के लिए सजगता आती है, तभी स्वतन्त्रता आती है। हम स्वयं को मुक्त बनाना चाहते हैं – स्वतन्त्र बनाना चाहते हैं, परमात्मा भाव तक ले जाना चाहते हैं, लेकिन यह जागरण कब आएगा? जब आन्तरिक वृत्तियों का परिष्कार करेंगे, जब बंधनमुक्ति की छटपटाहट जागृत होगी। जन्मों-जन्मों से यह आत्मा परतन्त्र है लेकिन मुक्ति की आकुलता कहाँ है? वह तड़प कहाँ है? अरे, मुक्ति की बात तो दूर रही, समदृष्टि भाव भी हमें सुहाता नहीं। चौबीसों घंटे मिथ्यात्व में दौड़ रहती है अज्ञान को दूर करने का भाव पैदा भी नहीं होता। भाव यदि जागृत भी हो जाए, तो उसके योग्य आचरण नहीं करते। मैं आपसे पूछ लूँ आप में से कितने सम्यग्दृष्टि हैं। इसका निर्णय कैसे करना? अपने-अपने अन्तर्मन की परख द्वारा ही यह निर्णय संभव है। जिसकी मुक्ति के लिए जरा भी तड़प है वही समझ ले कि सम्यग्दृष्टि है। कर्मबंधन तो बहुत कर चुके हो। जीवन का जो अंश बाकी है उसे क्या आस्रव में लगाना चाहते हो?

आस्रव का तो नाम भी अच्छा नहीं लगता। बात बिल्कुल ठीक है, लेकिन संवर-निर्जरा के कार्य भी तो करने की सोचो, तभी आस्रव से छुटकारा पा सकेंगे। जो जीवन हर क्षण मिथ्यात्व में बह रहा है, उससे तो ऊपर उठने का प्रयास करें। प्रार्थना हम भले ही कर दें कि प्रभु मुझे मुक्ति चाहिए, लेकिन अंदर में परतन्त्रता से छटपटाहट है क्या?

मन को तो वह परतन्त्रता भली लगती है, तभी तो अपना रखी है। यदि मुक्ति के लिए उत्कृष्ट लालसा जागृत हो जाए तो मुक्ति में कोई भी संशय नहीं रहता। हमको यदि बंधन अप्रिय लगे, तभी तो मुक्ति की तड़प पैदा हो। जब जान लें कि बंधन क्या है, मुक्त होना क्या है - तभी तो उसके प्रयास बने। आपकी स्थिति बड़ी विचित्र है बंधुओं, जान भी रहे हो, मान भी रहे हो लेकिन फिर भी मुक्त होना नहीं चाहते। अभी बंधनों को मजबूत करने में और बढ़ाने में लगे हो। जितना राग- भाव बढ़ता है, उतना ही द्वेष भी बढ़ता जाता है। यदि बंधन को बंधन मान ले तो उसे झटके से तोड़ दें। मैं बता गया था उस तोते की बात जो पिंजरे का अभ्यासी बन गया था। उसे बाहर निकाला, फिर भी वहीं पिंजरे में बैठा रहा। संत महात्मा कहते हैं 'जागो - जागो', थोडी खींचतान करते हैं तब तो इतना भी कर लेते हो। संत नहीं रहेंगे तब कहाँ धर्मस्थान याद आता है। ऊपर से चोट पड़ती है तो थोड़ी धर्मसाधना सच्ची या झूठी अथवा दिखावे मात्र की हो ही जाती है। हम भी प्रेरणा करते रहते हैं। सोचते हैं कि समझदार को तो संकेत ही काफी होता है। चाबुक किसको लगाई जाती है, कौनसे घोड़े को चाबुक मारी जाती है? कम्बोजी घोड़ा तो मालिक के इंगित-मात्र से चलता है। उसे चाबुक की जरूरत नहीं पड़ती चाबुक तो अड़ियल घोड़े को चाहिए।

ये अमरसिंह जी यहाँ के जमाई जी हैं इसीलिए शायद आज भी सामायिक में नहीं बैठे हैं। संवर में-निर्जरा में कर्मों का क्षय होता है। वहाँ परभव में जमाई का नाता लिहाज नहीं रखा जाएगा। कल गा रहे थे - 'ले संग खरची रे।" खुद को नहीं लेना? मैं विस्तार में नहीं

जा रहा, केवल संकेत रूप में यही कह रहा हूँ कि अनमोल घड़ियाँ बीती जा रही हैं। रोज हम सावधान किए जाते हैं, आप सतर्क हो जाइये।यह समय बार-बार नहीं मिलने वाला। सीधी-सी बात है। मुक्ति नहीं चाहिए आपको, ठीक है न, मैं तो बंधुओं बात स्पष्ट कह देता हूँ कर्म बन्धनों के प्रगाढ़ बनाने वाले कार्य खूब कर लेते हो, मुक्ति के लिए संवर और निर्जरा कितनी होती है? क्यों सोहनलाल जी? बसंतीलाल जी क्या इरादा है? ये मास्साब हँस रहे हैं। इतने दिन हो गए। एक भी सामायिक नहीं की। रोज की एक सामायिक का नियम करा दूँ? चलो लो पच्चक्खाण! कई लोग नियम लेते हुए भी घबराते हैं। कहते हैं "म.सा. अभी तो बहुत काम हैं फिर कर लेंगे पच्चक्खाण।" कुछ कहते हैं - "यहाँ तो बँधना पड़ता है। म.सा. नियम करवा देते हैं।" हम तो आपको मुक्ति का रास्ता बताते हैं। प्रेरणा देते हैं क्योंकि कहावत है - "जिसकी खाए बाजरी, उसकी बजाए हाजरी" तुम्हारी रोटी खाते हैं तो कुछ प्रतिबोध भी देना जरूरी है। हमारा तो सिद्धान्त है-

जग भला कहे या बुरा कहे, मेरा अभियान रहे कायम।
उन शाश्वत सत्यों पर भगवन्, मेरा अभियान रहे कायम।।
जो स्पष्ट सत्य लगता मुझको, मैं निर्भय होकर व्यक्त करूं,
तोड़ूँ जड़ता के बंधन को, परवाह सत्य की फ़कत करूँ,
उन सम्प्रदाय मतभेदों से, मेरा व्यवधान रहे कायम।। जग .....

बन्धुओं, मैं तो जरा स्पष्ट बोलता हूं। संकेतों को समझकर प्रवृति करोगे तो आपका भला होगा। प्रेरणा देना हमारा कर्त्तव्य है। चातुर्मास

कराया। कितने महीने का चातुर्मास होता है? चार महीने का। चातुर्मास किसके लिए है? साधु-संतों के - सतियों के लिए या आप सब के लिए, श्रावकों के लिए? या दोनों के लिए? संवत्सरी तक का चातुर्मास तो बहनों का हो गया। अब वे अपने घर के कार्यों में लग गई। पुरुषों का कब तक का? अरे, काम तो सदा के हैं। यदि बीमार हो जाओ तो सारे कार्य समाप्त करते हो या नहीं? चार मेहमान घर में आ जाएँ तो भी काम चलता ही हैं। यही समझ लो कि कुछ दिन ऐसा ही कोई अर्जेन्ट काम आ गया है। आज संडे का - रविवार का प्रसंग था, लेकिन कितने लोग लाए बच्चों को अपने साथ? कुछ ही ऐसे हैं जो बच्चों को यहां लाकर धर्म के संस्कार देने में रुचि रखते हैं, वरना बाकी तो बस खुद ही आ जाएँ इतना ही बहुत है। कुछ श्रोता तो सच्ची भावना लेकर चलते हैं, वे अपने जीवन का परिवर्तन कर लेते हैं और कुछ कांच और लकड़ी जैसे श्रोता भी होते हैं, जिनके अन्तरंग तक धर्म जाता ही नहीं। आपको कौनसी श्रेणी का श्रोता बनना है? रूई जैसा या कांच जैसा? आप सोच लें, खूब चिन्तन कर लें कि अपने जीवन का लक्ष्य किस प्रकार प्राप्त करना है। अब तो चातुर्मास उठने के चतुर्मास में चल रहा है। कल मंत्री जी बोल गए कि पौन बीत गया। एक चौथाई ही बचा है। आज लता जी ही बोल गई - "अमर शांति का पौन पराग लिया पी, पाव ही बच पाया।" अब आपको क्या कुछ करना है। इस शेष समय का कैसे अधिकाधिक लाभ लेना है, यह आपके सोचने का विषय है। आज सुबह तपस्वीजी म.सा. से मैंने कहा कि 'भेरूलाल जी हमारी नाकेबंदी करके रखते हैं। मुकेश को बाजार में भेज

देते हैं, खुद रास्ते में खड़े हो जाते हैं और गुड्डी को स्थानक में भेज देते हैं। हमें कहीं से भी खाली नहीं जाने देना चाहते।' तब तपस्वी जी म.सा. ने फरमाया - "स्वाभाविक है ऐसी बात! अब दिन कम रह गए हैं। इसी से उनकी व्यग्रता बढ़ रही है। कम दिनों में भी अधिक से अधिक लाभ ले लेना चाहते हैं।" बन्धुओं भावनाएँ आप सभी की प्रशस्त हैं, लेकिन सूक्ष्मता से चिन्तन भी आवश्यक है। जीवन का पथ प्रशस्त किस प्रकार बनाया जा सकता है - किस प्रकार अधिकतम निर्जरा हो सकती है, इसका विश्लेषण एकान्त के क्षणों में प्रत्येक व्यक्ति को करना अपेक्षित है। आप सभी की उच्च्च भावनाएँ बने, आत्मकल्याण की दिशा में सब अग्रसर हों, इसी शुभ भावना के साथ आज का विषय स्थगित करता हूं......

15 अक्टूबर, 1989

जो भी व्यक्ति बंधा है, वह उस अवस्था से संतुष्ट नहीं रह सकता। वह मुक्ति के लिए प्रयत्न करता है यानि जो भी बंधन में हैं, वह मुक्त होना चाहता है। यहां हम यह भी कह सकते हैं कि जिसमें मुक्ति का भाव जागृत हो गया, वह स्वतः ही बंधनों से छूट जाता है। इसका कारण यह है कि जब अंतरंग से मुक्ति की अभिलाषा उठती है, तो उसका कोई साम्य नहीं होता ' उसकी अपूर्ति का प्रश्न ही नहीं उठता। जो आकांक्षा अभिव्यक्ति तक की यात्रा कर लेती है और पथ के पड़ावों को भी यथार्थता से देख लेती है, वह आकांक्षा स्वयं मंजिल की तृप्ति बन जाती है।

3. मंजिल की चाह

(तर्ज : होंठों से छू लो तुम.....)

मेलववा परमानन्द .....

(प्रार्थना पूर्ववत्......)

आकांक्षा मुक्ति की :

मूलभूत संसार के दो रूप हैं - एक बंधन का तथा एक मुक्ति का। सबकी कामना मुक्ति की रहती है, चूंकि हम सब बंधन में हैं, इस दृष्टि से सब मुक्ति चाहते हैं। जो भी व्यक्ति बंधा है, वह उस अवस्था से संतुष्ट नहीं रह सकता। वह मुक्ति के लिए प्रयत्न करता है यानि जो भी बंधन में है, वह मुक्त होना चाहता है। यहां हम यह भी कह सकते हैं कि जिसमें मुक्ति का भाव जागृत हो गया, जो मुक्त होना चाहता है, वह स्वतः ही बंधनों से छूट जाता है। इसका कारण यह है कि जब अन्तरंग से मुक्ति की अभिलाषा उठती है तब उसका कोई साम्य नहीं होता- उसकी अपूर्ति का प्रश्न ही नहीं उठता। जो आकांक्षा अभिव्यक्ति तक की यात्रा कर लेती है और पथ के पड़ावों को भी यथार्थता से देख लेती है, वह आकांक्षा स्वयं मंजिल की तृप्ति बन जाती है। संसार का सर्वोत्तम आदर्श है - मुनि। इस परिवर्तनशील और नश्वर सृष्टि में कोई भी तत्व हमेशा नहीं रहता। सिद्धत्व ही एक ऐसा तत्व है जो शाश्वत है, इसीलिए सिद्धों के स्वरूप का वर्णन करते समय कहा जाता है - जहां जन्म नहीं मरण नहीं, रोग नहीं शोक नहीं, कर्म नहीं काया नहीं, मोह नहीं माया नहीं, राग नहीं द्वेष नहीं अर्थात्

जो आत्मा कर्मों से मुक्त हो चुकी है वह सिद्धत्व में रमण करती है। जब तक आकांक्षा है, तभी तक बंधन है, तभी तक संसार भ्रमण भी रहता है। जहां आकांक्षा नहीं रहती, वहां मुक्ति धाम है।

हमारी आत्मा अनंतकाल से बंधनों में है, अतः हम अनेक प्रकार की कामनाएँ लेकर चलते हैं किसी की कुछ कामना है - किसी की कुछ है। केवल एक कामना मुक्ति की ही होनी चाहिए। शेष सभी कामनाएँ बंधन में डालने वाली है। वह एक कामना है- परमानंद प्राप्ति की। गीतिका में गुजराती भाषा में यही कहा गया है कि मुझे संसार की अन्य कोई इच्छा - अभिलाषा नहीं है। मैं तो एक मात्र प्रभु दर्शन का आकांक्षी हूं। संसार के अनन्तकालीन प्रवाह में घूमती हुई मेरी आत्मा विभावों के विष को आज तक पीती रही है। कषाय के ताप से मेरी आत्मा झुलस रही है। अब मैं स्वभाव में आने के लिए पूर्ण रूपेण कटिबद्ध हूँ। मैं इन विषयों से ऊब चुका हूं। अब मैं परमात्मा की शरण में परमानंद की प्राप्ति के लिए आया हूं। मैं वह सुख प्राप्त करना चाहता हूं जो एक बार आकर पुनः वापस नहीं जाता। जिन्होंने लौकिक पदार्थों में सुख माना वे भूले हुए हैंक्योंकि जगत् के पदार्थों का सुख क्षणिक है, एक बार आकर वह सुख चला जाने वाला है। अच्छे खाने में सुख मान लिया। बढ़िया से बढ़िया मिष्ठान्न खाया, वह कितने समय तक शरीर या इंद्रियों को सुख देगा? कितने समय तक साथ रहेगा? ज्यादा खा लिया, तो भी मुश्किल। पर्याप्त खाया, तब भी कुछ क्षणों तक ही सुखदायी है। दो-चार घंटे पर समाप्त हो गया। स्वाद लिया, तब तक जिव्हा का सुख रहा, उसके बाद क्या है? अच्छा कपड़ा पहनना सुख मानते हैं। कोई सुन्दर कपड़ा पहना। वह दो - चार बार पहन लिया

तो उसके प्रति उतनी रुचि नहीं रह जाती। वह उपेक्षित हो जाता है, समाप्त हो जाता है। इसके अतिरिक्त और भी पदार्थ हैं, जिनके विषय में यही सिद्धान्त लागू होता है। आप जीवनोपयोग की विभिन्न वस्तुओं पर दृष्टिपात करके देख सकते हैं। फर्नीचर से सजा - सजाया मकान कितना सुन्दर लगता है। नया मकान बनवाने पर उसमें रंग - रोगन कराते हैं। लोग मकान के उद्घाटन पर- गृह प्रवेश के अवसर पर कितनी भीड़ इकट्ठी कर लेते हैं। धूमधाम भी खूब कर लेते हैं। अपने मित्रों - परिचितों को निमन्त्रण देकर बुलाते हैं। लोग आते हैं, मकान की प्रशंसा कर जाते हैं, उसके डिजाइन की, सजावट की तारीफ करते हैं - चले जाते हैं। दो - चार महीना बीतने पर वह मकान पुराना हो जाता है। पहले दिन वाला उत्साह रहता है क्या? जो प्रारंभ में उसमें रहने वालों को हर्षानुभूति हुई वह क्या बाद में स्थायी रह सकेगी? वह धीरे- धीरे समाप्त हो जाएगी। जो नई वस्तु प्रीतिकर लगती है, वह आकर्षण बाद में नहीं रहता। इस रूप में कहा जाता है कि भौतिक पदार्थों का आनन्द क्षणिक है, अस्थायी है। इसीलिए मुक्ति की कामना करनी ही अभीष्ट है क्योंकि सच्चे अर्थों में अव्याबाध और स्थायी सुख - शांति मुक्ति की उपलब्धि में ही है। वह एक बार प्राप्त कर लेने पर छीने जाने के भय से मुक्त है। एक बार मिल कर वह सुख जाता नहीं है। इसी भाव को प्रार्थना के माध्यम से गीतिका में व्यक्त किया गया है।

मेलववा परमानंद प्रभु शरणे हूं आव्यो।
संसार ना बंधन थी, मन मारूं घबराव्यो।।

विषयों का राग-भाव ही मुक्ति का बाधक तत्त्व है। हम संसार के विषयों में पाश में बंधे हैं। इसी के कारण मुक्ति की उपलब्धि नहीं

हो रही है। आप किस - किस से बंधे हैं? व्यक्ति के पाश में, मकान - दुकान के बंधन में, मोह-ममता के फंदे में। घर- परिवार के प्रति आसक्ति होने के कारण ही दुःखी होना पड़ता है। जितना - जितना बंधते जाते हो, उतने - उतने संक्लेश पाते जाते हो। द्वन्द्वों में बांधने वाला यह राग - भाव ही है। यदि राग - भाव क्षीण होता है तो मुक्ति प्राप्ति की भूमिका बनने लगती है। वीतरागता की उपलब्धि तक पहुंच जाते हो। गुणस्थान क्रम आप जानते हो? आत्मा के उत्थान पतन का वही क्रम है। गुण स्थान चौदह बताए हैं लेकिन मूल रूप में सराग और वीतराग यही आरोहण - अवरोहण - क्रम बताया जाता है। मिथ्यात्व गुण स्थान में आस्रव बंधन बहुलता से होते रहते हैं। यह मेरा घर है, मेरी दुकान - मेरी जायदाद है - इस प्रकार का ममत्व का बंधन जब तक बना रहता है, तब तक मिथ्यात्व गुण स्थान से ऊपर नहीं उठ पाते। मिथ्यात्व से थोड़ा ऊपर उठ कर जब तक सम्यक्त्व में प्रवेश करते हैं, तब तक भी राग - भाव रहता है। वास्तव में राग - ममत्व सब झूठा है बंधन का कारण है। हम उसे अच्छा समझते हैं। यह दृष्टि का फर्क है। जब राग - भाव से जागरण का निमित्त बनता है, तब पाँचवां - श्रावक गुणस्थान आरंभ होता है। उस अवस्था में राग भाव को सीमित करने के भाव बनते हैं। व्रत में क्या करते हो? कुछ मर्यादाएं रखते हो। विस्तृत इच्छाओं को, कषायों को सीमित करने की चेष्टा होती है। एक सीमा निर्धारित कर ली जाती है - इतने से ज्यादा जमीन नहीं रखूंगा, इतने आरंभ समारंभ से अधिक नहीं करूंगा। इतनी सीमा तक धन अपने अधिकार में रखूंगा। व्यवसाय तक की मर्यादा की जाती है। इसके अर्थ क्या? जितनी सीमा रखी, उतनी मात्रा में पापकर्म

का बंधन बंधा, बाकी छूट गया। छठे गुण स्थान प्रमत्त साधु गुणस्थान में और अधिक विकास होने लगता है। उसके बाद प्रत्येक गुणस्थान के आरोहण के साथ - साथ तृष्णा क्षीण होती जाती है - कषाय पतली होती जाती है। विकास का क्रम बढ़ता जाता है। शनैः शनैः त्याग का परिमाण बढ़ने लगता है। सभी पदार्थों को निस्सार मान लिया। उसके बाद कुछ राग - भाव नहीं रहता। जरा-सी समझ का ही तो फेर है। मोह के उपशम और क्षय से आत्मा आठवें, नवें, दसवें और ग्यारहवें गुण स्थानों में प्रवेश करती है। मोह को दबाती जाती है, राग-भाव का उपशम होता जाता है। वीतरागता के प्रति गति इस प्रकार होने लगती है। राग भाव का जितना शमन होता है, उतना बंधन भी टूटने लगता है। जब बारहवें गुणस्थान में आत्मा का प्रवेश होता है, तब मोह का परिपूर्ण क्षय हो जाता है। उसके बाद वीतराग - गुणस्थान और फिर केवल ज्ञान की स्टेज आती है। ग्यारहवें गुण स्थान के बाद मोह का उदय नहीं रहता। जहां उदयावस्था में मोह होता है, वह सरागत्व की अवस्था होती है। एक बार बन अवश्य जाते हैं उत्कृष्ट भाव - गिर जाये वह बात अलग है। परन्तु बारहवें गुणस्थान क्षीण मोहनीय छद्मस्थ वीतराग गुणस्थान में आत्मा पूर्ण रूपेण मोह से रहित हो जाती है। केवल ज्ञान तेरहवें गुणस्थान में हो जाता है लेकिन काया के साथ जुड़े होने के कारण वह गुणस्थान सयोगि केवली गुणस्थान कहलाता है। उसके बाद दिव्य ज्ञान की उपलब्धि होती है। केवल-ज्ञान, केवल-दर्शन प्राप्त होने पर अव्याबाध मुक्ति मिल जाती है। यह गुणस्थानों के क्रम का विषय सूक्ष्म दृष्टि से समझने का विषय है। हमारी साधना मुक्ति की साधना है। उसके लिए वीतराग भाव की आवश्यकता है, लेकिन ज्यों- ज्यों आयु बढ़ती

है, त्यों - त्यों अधिक आसक्त होते जाते हैं। सोचते जरूर हैं कि बेटे बड़े हो जाएं तो हम धर्म साधना में लग जायेंगे । बेटे कार्य भार संभाल लें तो बस, सांसारिक झंझटों से छूट जाएं, लेकिन होता कहां है ऐसा? बेटे सम्भालने वाले हो गए, किन्तु फिर भी छूटे क्या? कौन - कौन छूटे? विवेचन करने जैसा विषय है कि अनासक्ति कितनी है और रागासक्ति कितनी बढ़ रही है। ज्ञानीजन कहते हैं कि यदि यह मोह-ममत्व इसी प्रकार बढ़ता रहा तो मृत्यु की घड़ियों में भी वही सब कुछ याद रहेगा। अगले जीवन की आयुष्य ऐसे में बंध गई तो क्या होगा? देवलोक के देवताओं को तो पता लग जाता है कि आयुष्य समाप्त हो रहा है। उनके गले की दिव्य माला उनके च्यवन के समय से छः महीने पूर्व ही कुम्हलाने लगती है। सभी देवों को पता नहीं रहता, कुछ देवता जो उत्कृष्ट अवधिज्ञान के धारक होते हैं, वे यदि उपयोग लगाएं तो उनको पता लग जाता है। माला पहले खिली रहती है लेकिन आयुष्य पूर्ण होने के छः मास पहले वह माला सूखने लगती है - मुरझाने लगती है। उस स्थिति में कुछ देवताओं को पता चल जाता है कि अब हम जाने की स्थिति में पहुंच चुके हैं। अब हमसे देवलोक के योग छूटने वाले हैं। उस समय यदि किसी देव की उन पदार्थों में आसक्ति रह गई तो वह उसी प्रकार का आयुष्य बंधन कर लेता है। यदि किसी की रागासक्ति रत्नजड़ित भवनों में रह गई तो वह उन रत्नों के रूप में ही जन्मता है। अपनी ममता के कारण मरकर पृथ्वीकाय के जीवों का जन्म धारण कर लेते हैं। पुष्करिणियों में राग-भाव रखने वाले देव पानी के जीव बन जाते हैं। देवों के रमण के लिए बड़े भव्य रमणीय उद्यान होते हैं। यदि किसी देवता की आसक्ति उनमें रह जाए तो वह फूल बन

जाता है। कहां तो देवलोक की गति में थे और कहां तिर्थंच गति में गए? कौनसी गति है फूल की, तिर्यचं गति है न? आसक्ति के कारण पंचेन्द्रिय से एकेन्द्रिय बनना पड़ता है। जहां-जहां आसक्ति है, वहीं वह उत्पन्न हो जाता है। इसी से कहते हैं कि ममत्व - बंधन ढीले करो। जितना राग - भाव टूटता है, उतने मुक्त होते जाते हैं। मान लो कि मकान में खूब राग है - अनन्य आसक्ति है। अब सोचिए, यदि उस मकान में संयोगवश आग लग जाए तो कितना दुःख होगा? कितनी पीड़ा होगी? स्वामी रामतीर्थ के जीवन का एक संस्मरण मैं कई बार कहा करता हूं।

पल में हँसना - रोना :

स्वामी रामतीर्थ एक बार बाजार से गुजर रहे थे। एक सेठ उधर से रोता हुआ आया - "हाय, मैं लूट गया, बर्बाद हो गया।" यह कहते हुए सीना पीट रहा था। बच्चों की भीड़ उसके पीछे तालियाँ बजाती चल रही थी। बाजार में जो दुकानदार थे, वे भी उठकर देखने लगे। पूछा - "सेठ जी, क्या हुआ? क्यों रो रहे हो?"' सेठ ने कहा- "मेरा दस लाख का मकान जल गया। हाय, मैं तो कंगाल हो गया।" इतने में सेठ का मंझला लड़का आया और बोला- "पिताजी, रोने-पीटने की कोई आवश्यकता नहीं है। जो मकान जला है, वह हमारा नहीं जला।" सेठ ने पूछा - "हमारा नहीं तो किसका जला है?" लड़का बोला - "मकान तो हमारा ही था, किन्तु उसका सौदा दूसरी पार्टी को हो चुका था। दस लाख का माल जो जला है, वह हमारा नुकसान नहीं हुआ। जिसने वह मकान खरीदा था उसका हुआ है।" यह सुनते ही सेठ का रोना गायब हो गया। वह जोर - जोर से हंसने लगा। हंसते

हुए बोलता जाता था - "मेरा कुछ नहीं गया, मैं क्यों रोऊँ? जिसका माल जला है, वह रोए।" इतनी देर में सेठ का छोटा पुत्र वहां आया। वह बोला - "क्या पागलों की तरह हंस रहे हो? इतनी भारी 10 लाख की हानि हो गई और आपको हंसी सूझ रही है?" सेठ ने हंसते हुए ही स्पष्ट कर दिया - "अरे, वह नुकसान अपना नहीं हुआ। उसका तो पहले ही सौदा हो चुका था। वह मकान बेचा जा चुका था।" छोटा लड़का कहता है - "किसने कहा?" सेठ बोला- "तेरा यह भाई कह रहा है कि उस मकान के जलने से पहले उसको किसी दूसरे व्यक्ति के हाथ बेच दिया गया था। सौदा हो चुका था। ऐसी हालत में मकान के जलने का नुकसान उसी पार्टी को हुआ। हमें नहीं हुआ। जब नुकसान ही नहीं हुआ तो शोक क्यों करूं?" छोटा लड़का बिगड़ कर बोलता है - "पिताजी, आपको कुछ पता नहीं, मकान का सौदा जरूर हुआ था, किन्तु वह जबानी जमा - खर्च था। मजाक की बात थी मकान हमने दूसरी पार्टी को बेचा है, इस आशय की कोई लिखा - पढ़ी - पक्की कार्यवाही नहीं हुई थी। आप जरा बुद्धि से सोच कर बतायें कि अब मकान का नुकसान अपना हुआ या नहीं?" इतना सुनते ही सेठ जी तो फिर से छाती कूटने और रोने लगे।

बन्धुओं, वह रोना कहां से आया? मेरा पन ही उस रोने के पीछे कारण था। जहां ममत्व है, रागभाव है वहीं दुःख है और जहां ममत्व नहीं है वहां दुःख भी नहीं रहता। रागभाव टूटा कि बंधन टूट गया। मान लो जो मकान जल गया - जिसमें आग लग गई और जो महान् दुःख का हेतु बना - यदि वही मकान किसी परमार्थ में लग जाता, किसी संस्था को दान दे दिया जाता और बाद में जलता, तब क्या उसके जलने

से दुःख होता? नहीं होता, क्यों? क्योंकि उसके प्रति रागासक्ति नहीं रही। संस्था को डोनेट कर दिया यदि वही मकान बेच दिया जाए और उसके पांच लाख रुपये आ गए। वे रुपये सूटकेस में भर लिये। रजिस्ट्री दूसरे के नाम कर दी, तब मकान जलने की चिन्ता नहीं रहेगी। उस स्थिति में किसकी चिन्ता रहेगी? नोटों की चिन्ता रहेगी। मकान की चिन्ता नोटों के बैग में सिमट जायेगी। मकान जले या राख हो जाए, उसकी चिन्ता मिट जाएगी। तब नोटों की सुरक्षा करेंगे। कहीं चोरों की दृष्टि न पड़ जाए। नोटों के प्रति भय रहेगा। बैंक में जमा करा दिए वे नोट, तब क्या बाकी रहेगा? नोटों की सुरक्षा तो हो गई, अब वह कागज का टुकड़ा - बैंक की स्लिप या चैक वही सारी सुरक्षा का आधार बन जाएगा। सारी ममता सिमट कर वहां आ जाएगी। वैसी स्थिति में भी ममता तो है। यदि वह चैक डोनेट कर दिया। मन में यह भाव आया कि मुझे अपना ममत्व नहीं रखना, तो उस समय वह ममता - वह डर, सब खत्म हो जाएगा। कहां गई ममता? उसका विसर्जन कर दिया, समाप्त कर दिया उसे। राग टूट गया। ज्योंही राग टूटा, उसी क्षण सारा संक्लेश समाप्त! जिनके प्रति हमारी आसक्ति है - राग और ममत्व है, यदि उन आसक्ति के क्षणों में आयुष्य बंधन हो गया या प्राण त्याग दिए तो क्या होगा? उसी वस्तु के राग के अंदर कीड़े - मकौड़े, कुत्ते सांप बिच्छू आदि निम्न योनियों में जन्मना पड़ेगा।

सारी साधना का निष्कर्ष है निर्ममत्व भाव - अनासक्त भाव। आसक्ति तोड़नी है चाहे वह आसक्ति किन्हीं व्यक्तियों में हो अथवा किन्हीं पदार्थों में हो - जमीन में हो या परिवार में हो। सभी के प्रति आसक्ति उत्तरोत्तर कम होनी चाहिए। अन्तिम समय में मृत्यु की घड़ियों

में संलेखना - संथारा करते हैं तो क्या बोलते हैं? मैं शरीर का भी परित्याग करता हूं 'इट्ठीं कंतं पियं इमं सरीरं मणुण्णं मणामं धिज्जं... सबसे प्रिय अपना शरीर होता है, यह शरीर दृष्ट है, कांत है, प्रिय है। इतना प्रिय हमें यह शरीर है लेकिन उस समय उसे भी वोसिरा देते हैं। यह ममत्व का त्याग है। जब शरीर पर से भी राग हटा लिया, तब अन्य पदार्थों पर रहेगा क्या? वे सब पदार्थ तो स्वयमेव छूट ही जायेंगे।

आचार्य अमित गति ने स्वकृत द्वात्रिंशिका में कहा है - यश्यास्ति नैक्यं वपुसाति सार्धम् तस्यास्ति किं पुत्र कलत्रं मित्र? पृथक्कुरूते चर्मणि रोमकूपा, कुतोहि तिष्ठन्ति शरीर मध्थे।

बाल किस पर टिकते हैं? यदि शरीर ही नहीं रहे तो बाल-रोम कूप किस पर रहेंगे? बालों के समान मित्र, कलत्र कैसे अपने कहे जा सकते हैं? आप भी यह बात जानते हैं? नहीं जानते? जानते तो हैं लेकिन ... लेकिन..... किन्तु ....परन्तु यह लग जाता है। मराठी में कहावत है 'करंत पण वरंत नहीं' यानि समझते हैं, तो सब कुछ लेकिन आचरण नहीं करते। यह एक की नहीं सबकी बात है। सब जान रहे हैं कि यह शरीर मेरा नहीं है, एक दिन आंख बंद हो जानी है, किन्तु फिर भी दौड़ उसी तरफ की है। यहां आकर थोड़ी शास्त्र की वाणी सुन लेते हो ....सुनी .... बाहर गए कि सब खत्म। एक घंटे तक क्या सीखा ... क्या सुना - कुछ याद नहीं रहता। यहां पर बैठे हुए सारी बातें ठीक लगती है। जगत् की क्षणभंगुरता का एहसास होता है, लेकिन घर जाते ही फिर उसी उधेड़बुन में लग जाते हो। जानते हो कि महाराज साहब ठीक कह रहे हैं। जीवन का लक्ष्य वास्तव में आत्म साधना ही

है, यह भी मानते हो, लेकिन उसके अनुसार आचरण नहीं होता है। यही विडम्बना है कि संसार के पदार्थों को नाशवान् जानते हुए भी उनकी रागासक्ति छोडी नहीं जाती। इतना सुनते हो, कुछ तो परिवर्तन होना चाहिए - कुछ तो दृष्टि अन्तर्मन की ओर मुड़े, लेकिन कहां, बन्धुओं? संसार वृद्धि के लिए ... पद - प्रतिष्ठा के लिए सब कुछ करते हो .. पापकर्म करते हो.. छलकपट भी करना पड़े तो कर लो। एक - एक पैसे के लिए कितना करते हो। एक ऐसा ही प्रंसग बना-

पाँच रुपयों के लिए :

एक नौकर दुकान पर बैठा था। सेठ जी घर गए हुए थे। तभी एक टेलिग्राम आया। नौकर ने सोचा - "घर जाकर सेठ जी को टेलिग्राम दिखा दूं। लगता है कि इसमें कोई खुशखबरी है। सेठ जी खुश हो जायेंगे। इनाम भी दे सकते हैं। ज्यादा नहीं तो 5 रुपये तो मिल ही जायेंगे।" यह विचार करके वह उसी समय सेठजी के पास गया। सेठ जी हवेली में थे। उसने आवाज लगाई। सेठ जी बाहर आए पूछा - "क्या बात है?" नौकर ने टेलिग्राम उनके हाथ में पकड़ा दिया और बड़ी आशाभरी नजरों से उनकी ओर निहारने लगा। सेठजी ने टेलिग्राम पढ़ा। पढ़कर नौकर से तो कुछ नहीं कहा, लेकिन सेठानी से कहा - "अरे सुनती हो, जरा पानी गर्म करना।" नौकर का उत्साह ठंडा पड़ गया। सोचा - "सेठ जी इतनी जोर से बोल रहे हैं। पानी गर्म करवा रहे हैं। शायद कोई मौत हो गई है। उसमें जाना हो और आकर स्नान करना पड़े, इसी से पानी गर्म करने की बात कर रहे हैं। मैं तो सोच रहा था कि कोई उत्साहवर्द्धक शुभ सूचना आई है, लेकिन यहां तो सेठजी नाराज हो रहे हैं। कहीं गालियां न देने लगे।" यह सोचता हुआ

नौकर वहां से चुपचाप खिसक गया।

उसके जाने के बाद सेठ जी ने सेठानी से कहा - "पानी गर्म रखा है न? उसमें थोड़ी-सी चाय की पत्ती और दूध डालना है। चाय बनानी है।" सेठानी ने हैरान होकर पूछा - "चाय बनानी थी, तो आप इस प्रकार क्यों बोल रहे थे?" सेठ ने कहा - "तू समझती नहीं है। उस समय वही व्यवहार करना उचित था।" सेठानी ने पूछा - "तुम्हारी बातें मेरी तो समझ से बाहर है खैर, यह बताओ कि टेलिग्राम कहां से आया है? उसमें क्या लिखा है? सेठ ने कहा- "बम्बई से आया है टेलिग्राम। अपना बेटा फर्स्ट डिविजन में पास हुआ है। " सेठानी ने कहा - "तुम इतनी खुशी की खबर भी मन में कैसे दबाए रहे। प्रकट में रोष जाहिर किया। क्यों, ऐसा तुमने क्यों किया?" सेठ ने कहा - "अरी भलीमानस, अगर उस नौकर के सामने यह प्रकट कर देता कि खुशी की सूचना है। हमारा बेटा अच्छे नंबरों से फर्स्ट डिविजन से पास हुआ है - यदि यह बात उस समय बता देता तो वह 5 रुपये लिए बिना नहीं जाता। चाय भी पिलानी पड़ती और उसे कुछ इनाम भी देना अवश्य पड़ता। इस कारण मैं उस समय रूखा व्यवहार करता रहा ताकि वह खिसक जाए और 5 रुपये बच जाएं।"

देखा आपने? कितना छल - कितना दम्भभरा है मानव के मन में! 5 रुपयों के पीछे अंदर की उमड़ती हुई खुशी को दफना दिया। छल - प्रपंच करके 5 रुपये बचा रहे हैं ताकि धन जोड़ा जा सके। सोचिए, इतना करके भी क्या ले जायेंगे? टाटा - बिरला क्या अपने 10-5 कारखाने सिर पर बांध कर ले जायेंगे? बांधे भी तो खुद ही दब जायेंगे। पोते - पोती के लिए जोड़ लो। पोते - पोती मौज करेंगे, लेकिन

तुम्हें क्या लाभ होगा? धन में रागासक्ति रहेगी तो मर कर कुत्ता बन जाना चौकीदारी करते रहना अपने धन की! शास्त्रीय नियम पता है न? जहां आसक्ति रह जाए वहीं उत्पन्न होना पड़ता है।

जयगढ़ का किला आमेर में, आपने उसके विषय में सुन रखा होगा। उस किले की खुदाई हुई थी। कहते हैं कि उस खुदाई में इतना धन निकला था कि रात - दिन ट्रकें भर - भर कर जाती थीं। हाईवे भी बंद हो गया था। कोई वाहन नहीं चलते थे उस रोड पर केवल वे ट्रकें ही जाती थी। कुछ लोग कहते हैं कि सारा धन इंदिरा गांधी ने रख लिया, कुछ कहते हैं अफसर खा गए वहां जब खुदाई होने लगी तो बहुत सारे सांप निकले। वे सब ओर फैल गए। खुदाई न करने दें। एक तरफ से हटाते तो दूसरी ओर से निकल आते थे। वे सांप कहां से आएं, कौन थे? अरे, जिन्होंने वह धन गाड़ा था, वही रहे होंगे और कौन? उस धन में राग रह गया, तो सांप बन गए। अब उसकी चौकीदारी कर रहे थे। यह तो नियम है कि जैसे भाव रहते हैं वही गति मिलती है। इसीलिए उपासक दशांक सूत्र में वर्णन आया है। उसमें 10 श्रावकों का वर्णन है, जैसे ही उनके लड़के बड़े हो जाते थे, वे सब कार्यभार लड़कों पर छोड़ कर आत्मसाधना के पथ पर चल पड़ते थे। पौषधशाला में चले जाते थे- घर से आसक्ति तोड़ लेते थे। इसके साथ ही एक मीटिंग बुलाते थे। उस मीटिंग में समाज के लोगों से वे श्रावक घोषणा करते थे कि अब तक मैंने संसार का - घर गृहस्थी - व्यापार का सारा कार्य देखा, लेकिन अब मैं सबसे अलग हूं। जो कुछ भी कारोबार सम्बन्धी या गृहस्थी सम्बन्धी बात हो, वह मेरे पुत्र से की जाए। मैंने आज से आरम्भ - समारम्भ के कार्यों से खुद को

अलग कर लिया है। " इस प्रकार की घोषणा करके वे श्रावक स्थानक में चले जाते थे। वहीं रहना - धर्म ध्यान करना इस प्रकार का उनका जीवन होता था।

बन्धुओं, वे लोग समय पर सावचेत हो जाते थे। नियति से सावधान हो जाते थे। उन्हें भय रहता था कि हमारी आसक्ति किसी पदार्थ में रह जाए और पुनः वहीं उत्पन्न होना पड़े। इस कारण वे बच्चों के सुयोग्य होते ही साधना में प्रवेश कर लेते थे। प्रभु ने कहा है कि जितनी शक्ति हो, उसके अनुसार त्याग किया जाए। ममत्व विसर्जन करना सरल नहीं है। पाप की कमाई तो खूब करते हो लेकिन धर्म में कितना लगाते हो? कभी आय का कोई प्रतिशत भाग दान- धर्म के लिए निकालने की सोचते हो? जरा सोचिए, पाप से कमाया और सब का सब वापस पाप की वृद्धि में ही लगा दिया। क्या यह लाभकारी है? पापानुबन्धी पुण्य के उदय से यह मिला है, आगे भी पाप बढ़ा रहे हो। यदि कोई धर्म स्थान के लिए चंदा लेने आ जाए तो कितना दोगे? ठीक है दे दोगे लेकिन शादी - ब्याह में कितना व्यर्थ खर्च कर डालते हो? बैंड - बाजे और सजावट में कितनी फिजूल खर्ची हो जाती है, इसकी जानकारी है आपको?

बम्बई के एक सेठ हैं। आचार्य श्री के परम भक्त हैं। पूर्यपण के दिनों में पूरे आठ दिन पौषध में रहते हैं। दीवाली पर भी लक्ष्मी की पूजा नहीं करते। आचार्य श्री के दर्शनों को ज़ब आए तब बता रहे थे कि लड़की की शादी में लगभग एक करोड़ रुपया लगा था। देखिए आप, 5 लाख 10 लाख की बातें तो अब पुरानी हो गई। डेढ़ करोड़ रुपया शादी में खर्च किया। होटल का एक कमरा रात भर को

दूल्हा- दुल्हन के लिए बुक कराया 10,000 रुपये में। एक साड़ी 1,30,000 की एक 1,25,000 की। बारातियों की एक बनियान - चड्डी की धुलाई 60 रुपये! यह व्यर्थ के खर्च हैं कि नहीं? साठ रुपये में तो नये बनियान कई आ जायें और वहां धुलाई ही 60 रुपये दी जाती है? इतना दुरूपयोग है पैसे का। पानी की तरह पैसा बहाया जाता है। पुरानी ड्रेसे फेंक दी जाती है, नई - नई फैशन की रोज बनती हैं। ये सारा पापानुबन्धी कर्म है । आस्रव बढ़ाने वाला कार्य है। सत्कर्म में किसका पैसा लगेगा जिसने अच्छे भावों से कमाया होगा। कहावत है - पाप से कमाया तो धर्म में कैसे लगे? पुण्य से कमाया हुआ धन ही धर्म में लग जाता है। अपनी कमाई में से 2 प्रतिशत हिस्सा तो धर्म कार्यों के लिए रखो। नेट इनकम में से 2 प्रतिशत भी नहीं निकलता? विरले ही है जो थोड़ा धर्म का हिस्सा अपने धन में से निकाल पाते हैं। आप खुद को भले ही धन का मालिक कहो मैं तो चौकीदार कहता हूं। जो उपयोग नहीं कर सकता, अच्छे कार्यों में ध न को लगा भी नहीं सकता, वह मालिक कैसे हो सकता है? वह तो चौकीदार ही है। राजे - महाराजे अरबों - खरबों के मालिक थे, क्या साथ ले गए? उनके पीछे दूसरे लोग मालिक बन गए, फिर तीसरे बन गए। इस प्रकार मरते गए और धन के चौकीदार बनते गए - रक्षक बनते गए। धन तो वहीं का वहीं रहा। यदि उस धन का उपयोग परमार्थ के कार्यों में होता, तो उनको सांप नहीं बनना पड़ता। धन की चौकीदारी नहीं करनी पड़ती। थोड़ी प्रतिष्ठा थी उनकी? इतनी सम्पति होने पर भी क्या गति पाई? जो दान - परोपकार में लग जाएगा - जिस ध न की रागासक्ति छूट जाएगी, वही तो काम का धन है, वरना तो सारा

बंधन का हेतु है। वही बात मैं आपके समक्ष रख रहा था कि हमें राग से ऊपर उठना होगा- वीतरागत्व की ओर बढ़ना होगा।

सुबाहु कुमार भी अपनी रागासक्ति तोड़ रहा है। वह अहिंसाव्रत और सत्यव्रत अंगीकार करता है। असत्य का परिहार करता है। स्थूल असत्य का परित्याग और सूक्ष्म की मर्यादा कर लेता है। बड़ा झूठ नहीं बोलूँगा। राजदंड या कुछ अन्य कारण से यदि बोलना पड़े तो उसका आगार रखा जाता है। वह इतनी बड़ी प्रतिज्ञा- संकल्प लेता है कि आगारों सहित मैं जीवन भर सत्यव्रत का पालन करूंगा। वैसे तीन प्रकार का त्याग होता है मानसिक, वाचिक और कायिक। मन में सद्भूत विचारों का आना यानि हिंसाकारी विचारो की उत्पत्ति न होना, असत्य भावों की उत्पत्ति न होना यह मानसिक व्रत है। वाणी से किसी को क्लेश देना, तड़पाना, नुकसान पहुँचाना यह वाचिक हिंसा है। इसका भी परित्याग सुबाहु कुमार करता है। शरीर के द्वारा भी किसी को पीड़ा न पहुंचे, इस प्रकार का विवेक रखना कायिक अहिंसा है। ऐसा कोई आचरण नहीं करना जिससे किसी को किसी भी तरह का कष्ट या नुकसान पहुंचे यानि यथार्थ का स्वरूप - सत्य का स्वरूप प्रतिपल हमारे समक्ष रहे। शास्त्रकारों ने सत्यव्रत की बड़ी महिमा बताई है। सत्य को प्रत्येक धर्म ने आदर दिया है। संस्कृत का एक श्लोक है :-

सत्येन धारयते पृथिवी, सत्येन तप्यते रविः।
सत्येन वातिवायुश्च, सर्वे सत्यं प्रतिष्ठितं।।

क्या कहा? सत्य के कारण ही पृथ्वी सभी जीवों को धारण करती है और सत्य के बल पर ही रवि यानि सूर्य चमकता है। सत्य

से ही पवन चलती है और सभी प्रकार के कार्य मात्र सत्य के बल से ही होते हैं। सत्य की बहुत प्रतिष्ठा है। सत्य पर सब कुछ टिका है। सत्यव्रत दूसरा व्रत है। पहला अहिंसा व्रत है। जहां सत्य है, वहीं सारे सुख है। सत्य में सारे पापों से बचे जाते हैं। बहुत से ऐसे आख्यान हैं कि सत्य के कारण व्यक्तियों का पूरा जीवन पापों से बच गया। सारी जिनवाणी का सार यही है। निष्कर्ष यही है कि अधिक से अधिक पाप से हम बचें। पाप से बचने को क्यों कहा? पाप से बचें, ताकि धर्म के प्रति उन्मुख हो। आत्म कल्याण के प्रति उन्मुख हों। पूरा जीवन यही सब आप सुनते आ रहे हैं - अनंत काल से सुन रहे हैं। सुनना सार्थक तभी है, जबकि जीवन में उतरे। व्यवहार में परिवर्तन हो ...

16 अक्टूबर, 1989

सच्चं लोगम्मि सारभूयं।

यहां सत्य को संसार का सार बतांया है। आप किसे सार समझते हो? आपकी दृष्टि में संसार का सार कुछ और होगा, लेकिन ज्ञानीजन सत्य को ही लोक का सार मानते हैं। इसके अलावा उनकी दृष्टि में सब कुछ निस्सार है। जहां – जहां सत्य है, वहीं वहीं सार है, बाकी असारता है – बेकार है। आप सत्य के महत्त्व को नहीं पकड़ पाते। मन आपका असत्य की ओर ही दौड़ता है। जानते सब हैं कि सत्यवादी सभी का प्रीतिपात्र होता है, विश्वास पात्र होता है। आप किस पर विश्वास करते हो? सत्यवादी के लिए तो दुश्मन के दिल में भी विश्वास होता है। वह भी यह जानता है कि सत्यवादी अपने सत्य को नहीं छोड़ सकता। शत्रु के लिए भी वह झूंठ नहीं बोल सकता।

4. सत्य ही जीवनसार

(तर्ज : चला रे हंसा.....)

मानव का जीवन, एक यही मुक्ति द्वार।
विषयों में ही खोता इसको, वह तो है मूढ़ गँवार।। मानव.

नरक तिर्यंच योनि में भोगे दुःख अनेकों बार।
देवयोनि में भौतिक सुख का होता न पारावार।। मानव.

तीनों गति में मुक्ति मार्ग के, साधन का न आधार।
केवल मनुज योनि ही ऐसी, खुलते हैं मुक्ति द्वार।। मानव.

फिर भी मानव तन में आकर, जो न करे शुभ करा।।
विषय की बन जीवन खोता, पाता है दुःख अपार।। मानव.

अवसर मिला तुझे अणमोला, करले कुछ श्रेयकार।
मोक्ष मार्ग की साधना करले, चिर शान्ति दातार।। मानव.

मोक्षाराधना मानव जन्म में :

गीतिका की पंक्तियों में मानव जन्म की महत्ता के सम्बन्ध में कुछ तथ्य प्रस्तुत किए गए हैं। मानव जीवन मुक्ति प्राप्ति का साधन है। कोई देवता चौथे गुण स्थान तक, कोई तिर्यंच भी पाँचवें गुणस्थान तक जा सकते हैं, लेकिन उनके लिए आगे स्थान ही नहीं है। वे चौथे - पांचवे गुणस्थान से ऊपर नहीं जा सकते, लेकिन मानव कहां तक जा सकता है? चौदहवें गुणस्थान तक मनुष्य जा सकता है और

उसके बाद भी सिद्धगति उपलब्ध करने की उसमें सामर्थ्य है। सभी शास्त्रकार यही संदेश दे रहे हैं कि युग - युगों से हमारी आत्मा राग भाव में, मोह माया में फँसी हुई है। ये हेतु आत्मा को उच्च स्थिति में उठने ही नहीं देते। प्रवचन श्रवण से भाव जरूर स्वच्छ बनते हैं। यहां बैठने तक निर्जरा हो जाती है। सहज ही कर्मों के वृन्द के वृन्द उड़ रहे हैं। यहां से उठने पर - बाहर जाने पर पुनः मोह के, राग के बंधनों में पड़ जाते हो, क्योंकि आसक्ति संसार से जुड़ी है। जिसने सांसारिकता का आकर्षण छोड़ दिया, वही मुक्त बन गया।

संसार के आकर्षण बड़े जबरदस्त हैं। बार-बार मोह खींचता है। जिसने क्षुद्र दायरों को छोड़ दिया-उनके आकर्षणों को हटा दिया, वह सारे संसार को अपना समझेगा। वही समस्त सम्राटों का सम्राट है - राजाओं का राजा है, क्योंकि उसने किसी एक को अपना नहीं माना, सबको अपना माना है। उसके लिए कोई भी एक व्यक्ति विशेष नहीं है, सभी विशेष है।

डायोगनिज की निस्पृहता :

कहते हैं यूनान का एक संत डायोगनिज हुआ है। बड़ा मस्त संत था। उसको दुनिया की कुछ भी परवाह नहीं थी। उसकी चारों ओर ख्याति फैल रही थी। उसकी प्रसिद्धि से सम्राट सिकन्दर भी प्रवाहित हुआ। सिकन्दर ने उसको अपने दरबार में बुलाने के लिए संदेश भेजा। कई बार सम्राट का राज्यकर्मचारी डायोगनिज को बुलाने - हेतु गया, किन्तु वह नहीं आया। अनेकों आमन्त्रण भेजने पर भी वह दरबार में नहीं गया। उसका कहना था - "मुझे क्या लेना किसी सेठ या सम्राट से?

मुझे नहीं जाना है किसी के घर पर।" अपने संकल्प का पक्का वह डायोगनिज संत सम्राट के बुलाने पर भी नहीं गया। अनेकों बार बुलाने पर भी जब वह संत दरबार में नहीं गया तो सिकन्दर को बुरा लगा। क्रोध भी आया साथ ही थोड़ी हैरानी भी हुई। उसने सोचा - "मैं सिकन्दर महान् हूँ मेरे सामने हजारों लोग हाथ जोड़कर खड़े रहते हैं। मेरी एक कृपा दृष्टि पाने वाला स्वयं को धन्य समझता है। यह कैसा संत है, जिसे मेरी कुछ परवाह ही नहीं है?" कहते हैं कि सिकन्दर स्वयं चलकर उस संत के पास गया। उस समय डायोगनिज सुबह की धूप में लेटा था। सम्राट आकर खड़ा हो गया। संत फिर भी लेटा ही रहा। न तो सम्राट के स्वागत में खड़ा ही हुआ और न ही दो शब्द आदर के कहे। यह तक नहीं बोला - "आइये बैठिए, पधारिए।" उस संत ने कुछ भी खुशी जाहिर नहीं की कि इतना बड़ा सम्राट मेरे घर पर आया है। वह तो अपने में ही मस्त रहा।

सम्राट सिकन्दर के अहं को चोट लगी। "मैं सिकन्दर महान् हूँ।" बड़ी घमंड भरी वाणी से उसने परिचय देते हुए कहा। संत ने भी उपेक्षा से पूर्ण लहजे में अपना परिचय दिया - "मैं हूँ परमात्मा का भक्त - एक संत! मुझे डायोगनिज कहते हैं।" इतना निस्पृह उत्तर सुनकर सम्राट सिकन्दर को एक तेज झटका लगा। उसने सोचा - "यह विचित्र व्यक्ति है। मेरी ख्याति इसने अवश्य सुनी होगी। जानता होगा कि मैं विश्व की महान् हस्ती हूं। इतने पर भी इसको मेरी कुछ परवाह नहीं हुई।" सिकन्दर ने पुनः अपनी शंका का समाधान करना चाहा- "तुम जानते हो मुझे? मैं कौन हूँ?" संत ने कहा - "हाँ, जानता हूँ तुम एक इंसान हो मेरी तरह! जैसा मैं हूँ वैसे ही तुम हो।"

सिकन्दर बोला -"मैं तुम्हारी तरह कोई मामूली आदमी नहीं हूँ। मैं दुनिया का बादशाह हूँ।" संत ने प्रत्युत्तर दिया - "ठीक है, तुम बादशाह होंगे, लेकिन मैं भी बादशाह हूँ। अन्तर यही है कि तुम्हारी बादशाहत जरा छोटी है, मेरी बहुत बड़ी है।" संतों की बादशाहत कितनी होती है? उसकी तुलना में आप लोगों की बादशाहत छोटी है कि नहीं? आपकी दुनिया तो छोटी-सी है। संतों की दुनिया विस्तृत है। जो निस्पृह हो गया - जिसने समस्त संसार को अपना लिया, तो संसार का सभी साम्राज्य उसका ही है। राजा को क्या कहते हैं? प्रजापालक। यानि प्रजा का पालन करने वाला। मुनि क्या है? छः काया का प्रतिपालक! छः काया में सारा संसार आ गया। प्रत्येक प्राणी का उसमें समावेश है। राजा की राज्य सीमा होती है। साधक की सीमा नहीं होती। जो निस्पृह साधक है, वह सारे सम्राटों का सम्राट है, निस्सीम साम्राज्य का स्वामी है वह! संत डायोगनिज ने सिकन्दर को यही उत्तर दिया? उसने कहा - "मैं सारी दुनिया से भी बड़ा बादशाह हूं। मेरा साम्राज्य असीम है।"

सम्राट सिकन्दर संत की निस्पृहता से बड़ा प्रभावित हो गया। वह संत के चरणों में झुक गया। सम्राट ने कहा - "आप महान हैं, आपकी निस्पृहता को शतशः प्रणाम है। मुझे - कुछ सेवा का अवसर दें तो मैं आपकी सेवा करके सौभाग्य प्राप्त करूँ। "संत क्या सेवा बताएगा? उध र पंजाब में, जम्मू में एक रिवाज है। वहां श्रावक संतों के दर्शनार्थ आते हैं ..... वंदन करके सुख-साता पूछते हैं फिर प्रायः करके पूछा करते हैं - "महाराज साहब, कोई सेवा बताइये। हमें अवसर दीजिए।" अब संत क्या अवसर दें? यही कहते हैं - "भाई सामायिक करो, माला

फेरो, धर्म ध्यान स्वाध्याय करो इसके अतिरिक्त क्या सेवा बताएँ? वह सम्राट भी डायोगनिज से पूछ रहा था– कुछ सेवा बताने का आग्रह कर रहा था। संत ने कहा – "सेवा ही करना चाहता है तो जरा परे हट। धूप छोड़ दे। मैं प्रकृति की सुहानी धूप का आनंद ले रहा हूं। सूर्य की किरणें तेरे खड़े होने से रूक रही है अतः तू थोड़ा परे हट कर खड़ा हो, यही सेवा कर।" क्या सेवा बताई? सम्राट हैरान हो गया। उसने सोचा – "कहां मैं संसार में फँसा हुआ हूँ? मुझसे बड़ा मुझसे अच्छा तो यह निस्पृह संत है।" सिकन्दर ने डायोगनिज को अपना गुरु मान लिया। उस संत से प्रार्थना करने लगा – "आप मेरे साथ चलें। मेरे महलों को पवित्र करें।" वह जाता ही नहीं था। संत के लिए सम्राट के महल क्या उपयोग के हो सकते हैं? वह उन सुखों को कुछ गिनते ही नहीं। जो गिनने लगे फिर वे संत नहीं रह जाते। वे छोटे बन जाते हैं सम्राट के महलों के सुख बड़े बन जाते हैं। जहां भेद की रेखा न हो – जंगल और महल सभी समान लगें, वही निस्पृहता आती है। जिसने सब कुछ अपना ही मान रखा है, उसे फिर कुछ चाहिए ही नही। यूं कह सकते हैं कि उसको आत्म- परमात्म भाव के अतिरिक्त अन्य कुछ कामना नहीं रहती।

बहुमूल्य कंठा तोड़ दिया :

रामायण का एक प्रसंग है। जब राम लंका विजय करके अयोध्या लौट आए थे, उस समय का प्रसंग है। राम के अयोध्या लौटने की प्रसन्नता अयोध्यावासियों के हृदय में उमड़ रही थी। उसी संदर्भ में एक स्वागत समारोह का आयोजन किया गया। सब लोग बैठे थे। सीता की दृष्टि हनुमान की ओर गई। ¯¯पकार क

स्मरण आया तो सोचा - "ऐसे में हनुमान को कुछ भेंट देकर उसका सम्मान करना चाहिए।" यह विचार करके सीता जी ने अपने गले का बहुमूल्य कंठा निकाला। सीता की आँखें सजल हो गईं, स्मरण आया - "यही पवनपुत्र है जिसने मेरा पता लगाया। राम का दूत बनकर आने वाला और मुझे राम से मिलाने वाला यही वीर है।" इन भावों में डूबती हुई सीता ने अपने गले का वह कंठा हनुमान को भेंट कर दिया। सभी उपस्थित जनता ने हर्षध्वनि करके हनुमान का सम्मान किया। हनुमान ने भी बड़े आदर भाव से माता जानकी द्वारा दी हुई भेंट स्वीकार की। उस समय हनुमान ने इधर - उधर देखा। पवनपुत्र की बेचैन नजरें कुछ खोज रही थीं। एक क्षण बाद ही वे उठे और थोडी दूर पर पड़ा हुआ एक पत्थर उठा लाए। हनुमान ने कंठे में जड़े हुए एक हीरे को तोड़ा। उस पर पत्थर से चोटें करने लगे। लोग आश्चर्य से देख रहे थे। रत्न जड़ित कंठा सीता जी ने दिया और हनुमान यह क्या कर रहे हैं। एक- एक रत्न को पत्थर से फोड़कर देखते और उसे फेंक देते। सभी चकित थे कि सीता माता ने इतना कीमती हार भेंट में दिया है और हनुमान उसे तोड़ क्यों रहे हैं? एक-एक हीरे को तोड़कर सूर्य की ओर करें और बुरा-सा मुंह बनाकर फेंक दें। सीता जी को भी जिज्ञासा हुई। पूछ लिया - "पवन पुत्र, यह क्या कर रहे हो? इसकी परख कर रहे हो कि खरा है या खोटा है?" हनुमान ने हाथ जोड़कर उत्तर दिया "माता, परख तो कर रहा हूं लेकिन खरे - खोटे की नहीं, बल्कि इसमें राम-सीता हैं या नहीं यह परख कर रहा हूं। एक-एक रत्न को तोड़कर देख रहा हूं कि इसमें राम हैं या नहीं।" सीता ने पूछा

- "यदि इसमें राम नहीं मिले तो क्या करोगे?" तब हनुमान बोले - "उस हालत में ये सारे कंकड़ हैं। जिसमें राम न हो वह हीरे भी मेरे लिए बेकार हैं। मेरे किस काम के हैं वे?"

मैं आपको बता रहा हूं कि साधक की एक ही तमन्ना रह जाती है। वहां आत्म कल्याण के अतिरिक्त अन्य कोई काम्य ही नहीं रहता। बात सामान्य-सी है लेकिन समझने की है। मैं कहना यही चाह रहा हूं कि जिसकी दृष्टि आत्मा की ओर केन्द्रित हो जाती है, उसके लिए बाकी पदार्थ नगण्य हो जाते हैं। संसार के पदार्थों की उसकी दृष्टि में कोई वैल्यू नहीं रह जाती। स्वामी रामकृष्ण परमहंस की बात अधिक प्राचीन नहीं हुई। निकट अतीत की ही घटना है। वे विवेकानन्द के गुरु थे। विवेकानन्द का बचपन का नाम नरेन्द्र था। बड़े प्रतिभावान थे वे। उनकी चारित्रनिष्ठा और योग्यता देखकर उनके गुरु स्वामी रामकृष्ण परमहंस ने एक दिन उनसे कहा - "वता, मैं तुम्हें अष्ट सिद्धि देना चाहता हूं। उन्हें लेकर तुम समाज कल्याण करना। तुम्हें अपने जीवन में परमार्थ-हेतु उन सिद्धियों की जरूरत पड़ेगी। ले लो।" देवराज जी चाहिएँ अष्ठ सिद्धियाँ? ऋद्धि -सिद्धि तो सबको चाहिए? दीपावली आ रही है। क्या करते हो दीवाली पर? नई बही बनाते हो? उस पर लाभ-शुभ लिखते हो। कुछ लोग लिखते हैं - "लक्ष्मी जी भंडार भरि जौ। सिद्धि मिले तो क्या करना? लेनी या नहीं? मोदी जी, क्या ख्याल है? ऊपर से रिद्धि सिद्धि की रट लगाते हो, उसकी प्राप्ति के लिए जरा भगवान् की उपासना भी कर ली जाती है। ऊपर से भगवान् - भगवान् की रट रहती है, पर भीतर में क्या भाव है? सिद्धि मिल जाए

- यही कामना है। भगवान् का स्मरण मन से नहीं होता। यदि मन में भगवान् हो तो फिर दुकान भी याद न रहे। मोह में पड़े रहते हो। यदि एक तरफ भगवान् और दूसरी तरफ सिद्धि रख दी जाए तो क्या हो? किधर दौड़ें सब? सिद्धि की तरफ ही दौड़ेंगे।

कल्पना कीजिए कि आप सुबह-सुबह धर्म स्थान में आ रहे हैं और रास्ते में दस - बीस हजार का ग्राहक मिल जाए। अब क्या करना? उपाश्रय सूझेगा उस समय? उस समय तो बस वह ग्राहक ही भगवान लगेगा। धर्म साधना एक तरफ धरी रह जाएगी। सामायिक, उपासना सब धन - वैभव की प्राप्ति के लिए ही तो करते हो। मैं बता रहा था स्वामी रामकृष्ण परमहंस ने विवेकानन्द से कहा - ''वत्स, सिद्धि ले लो, तुम्हारे काम आयेगी।'' विवेकानन्द ने प्रश्न किया - ''क्या इसको लेने से मुझे परमात्मा की प्राप्ति होगी?'' गुरुदेव बोले - ''परमात्मा की प्राप्ति तो नहीं होगी, हाँ बाकी सब कुछ मिलेगा।'' विवेकानंद ने तत्क्षण कहा - ''यदि इससे परमात्मा की प्राप्ति नहीं होगी तो ये सिद्धियाँ मेरे किस काम की है? मैं इनका क्या करूँगा। मुझे ऐसी विद्या नहीं चाहिए। गुरुदेव, मुझे तो वही विद्या - वही सिद्धि दीजिए जिससे मुझे परमात्मा की उपलब्धि हो जाए।'' यह विवेकानंद की बात थी। उनकी दृष्टि इतनी ही निर्मल थी। सबकी बुद्धि वैसी नहीं हो सकती। सबकी दृष्टि वैसी निर्मल नहीं बन सकती। उतनी निस्पृहता आनी कठिन है बंधुओं!

आज तो संसार में सर्वत्र धन की पूजा है। सबकी दौड़ उसी ओर है। धन के लिए परमात्मा को भी दाँव पर लगा दें। ईमान और नैतिकता को भूल जाएँ। नीतिकार कहते हैं :-

धन के पीछे अंधी होकर दुनिया दौड़ी जा रही।

न्याय - अन्याय की परवाह नहीं। धर्म - अधर्म की परवाह नहीं। अभी तपस्वी जी म.सा. फरमा रहे थे। आप सबने सुना कि धन के पीछे मानव कितने पाप कर डालता है। अठारह पाप बताए हैं। सारे पाप छोड़ने को मैं नहीं कर रहा, इस समय यही कहूं कि आप एक ही पाप छोड़ दो। केवल मिथ्यादर्शन शल्य के त्याग का प्रत्याख्यान कर लो। सम्यग्दृष्टि भाव से धन कमाना - अन्याय - अनीति से नहीं कमाना यही नियम कर लो। उसमें मिथ्यात्व नहीं लगता। यदि श्रावक व्रत धारण करने वाला व्यक्ति है तो वह पैसा कमाने में पाप से डरेगा। प्रामाणिकता से ही धनार्जन करेगा। बन्धुओं, धार्मिक वृत्ति रखने से पैसा कम मिलता है। उससे केवल आवश्यकताओं की पूर्ति हो सकती है। अन्य विलास की सामग्री नहीं मिल सकती। उसमें भी आरंभ - समारंभ - जनित पाप तो लगता ही है। मजदूर ईमानदारी से रोजी - रोटी कमाता है, लेकिन पाप तो उसे भी लगता है। मिट्टी खोदे तो उसमें भी कई जीवों की जिराधना होती है। उसे हिंसा लग रही है - पाप लग रहा है। अहिंसा व्रत खंडित हो रहा है। जिनकी हिंसा वह कर रहा है, उनकी आज्ञा नहीं है इसलिए आचार्य व्रत खंडन का पाप भी लग रहा है। आचार्य व्रत भी उससे जुड़ा है जिन पृथ्वी काय के जीवों की हिंसा कर रहा है, क्या उन्होंने आज्ञा दी है कि हमें मारो? यदि नहीं दी तो असत्य आचरण कर रहे हैं चोरी कर रहे हैं। यूँ पाप एक दूसरे से जुड़े हैं। इसी से श्रावक व्रत स्वीकार करने को कहा जाता है। व्रत ग्रहण करने से अधिकांश पापों से बचा जा सकता है।

सुबाहु कुमार का प्रसंग :

सुबाहु कुमार सत्यव्रत धारण करता है। सत्य ही सारे जगत् का सारभूत है। शास्त्रों में आया है :-सच्चं लोगम्मि सारभूयं।

यहाँ सत्य को संसार का सार बताया है। आप किसे सार समझते हो? आपकी दृष्टि में संसार का सार कुछ और होगा, लेकिन ज्ञानीजन सत्य को ही लोक का सार मानते हैं। उसके अलावा उनकी दृष्टि में सब कुछ निस्सार है। जहाँ - जहाँ सत्य है, वहीं वहीं सार है, बाकी असारता है - बेकार है। आप सत्य के महत्त्व को नहीं पकड़ पाते। मन आपका असत्य की ओर ही दौड़ता है। जानते सब हैं कि सत्यवादी सभी का प्रीति पात्र होता है - विश्वासपात्र होता है। आप किस पर विश्वास करते हो? सत्यवादी के लिए तो दुश्मन के दिल में भी विश्वास होता है। वह भी यह जानता है कि सत्यवादी अपने सत्य को नहीं छोड़ सकता। शत्रु के लिए भी वह झूठ नहीं बोल सकता।

अश्वत्थामा हतो :

जिस समय कौरवों - पाँडवों का युद्ध चल रहा था, तब की घटना है। यह प्रसंग ऐतिहासिक प्रसंग है। महाभारत का युद्ध निर्णायक दौर में चल रहा था। एक दुर्योधन को छोड़कर बाकी सभी कौरव मारे गए थे। पाँडवों की विजयश्री निश्चित थी। दुर्योधन बहुत अच्छा योद्धा था। लेकिन एकाकी क्या करे? अकेला कैसे लड़े? कथाकार कहते हैं कि वह दुर्योधन कई दिनों तक किसी तालाब में छिपा रहा। उसने मन में सोचा कि क्या करूं। अब मेरी मृत्यु निश्चित है। इस प्रकार छिप कर कब तक बचा रह सकूंगा? कोई उपाय तो सोचना ही होगा। ऐसे में उसे युधिष्ठिर की याद आई

युधिष्ठिर बहुत सत्यवादी थे। जब गुरु द्रोणाचार्य का मनोबल गिराने की दृष्टि से कृष्ण ने युधिष्ठिर से कहा कि आप अश्वत्थामा मारा गया यह कह दें ताकि द्रोणाचार्य को विश्वास आ जाए कि मेरा पुत्र अश्वत्थामा जीवित नहीं है। इस प्रकार द्रोण का मनोबल टूट जाएगा और वे सैन्य संचालन न कर पायेंगे - उस समय युधिष्ठिर ने इस बात को सत्य के विरूद्ध बताते हुए इन्कार कर दिया। आखिर कृष्ण के बहुत समझाने पर उन्होंने यह कहा- "चूंकि अश्वत्थामा नाम का हाथी मारा गया है अतः मैं यह कह सकता हूं कि अश्वत्थामा हाथी जीवित नहीं है।" कृष्ण तो नीति कुशल थे। उन्होंने यह स्वीकार कर लिया। युधि ष्ठिर से यह कहलवा गया - "अश्वत्थामा हतो। नरो वा कुंजरो वा।" इस वाक्य का प्रथमाँश जोर से कहा गया शेष बात बोलते समय श्री कृष्ण ने जोर से शंख बजा दिया। द्रोणाचार्य ने 'अश्वत्थामा हतो' इतना स्पष्ट सुना लेकिन शेष बात - नरो वा कुंजरो वा यानि मनुष्य या हाथी' यह बात वे न सुन सके। श्री कृष्ण की योजना सफल हुई। युधिष्ठिर ने सत्य भाषण किया, लेकिन श्रीकृष्ण ने अपना मन्तव्य सिद्ध किया। द्रोणाचार्य ने युधिष्ठिर द्वारा उच्चरित होने से उस बात को सत्य माना। युधिष्ठिर कभी भी असत्यभाषण नहीं कर सकते, यह बात शत्रु भी जानते थे।

वहीं यहां पर मैं बता गया हूँ कि सत्यवादी की बात को शत्रु भी मान्यता देते हैं। उस समय प्रबल भयभीत हुया दुर्योधन भी अपनी जान बचाने का उपाय सोच रहा था। ऐसे समय उसको सत्यनिष्ठ युधिष्ठिर की याद आ गई। उसे उस स्थिति में वे ही अपनी रक्षा करने

वाले सहायक नजर आए। दुर्योधन कौन था? युधिष्ठिर का शत्रु था। वह कौरव था। दोनों की लड़ाई हो रही थी, लेकिन आप देखिए, दुर्योधन को युधिष्ठिर पर कितना भरोसा है! कितना विश्वास है! संकट की घड़ी में अपने प्राण बचाने के लिए दुर्योधन को शत्रु याद क्यों आया? उस समय उसको युधिष्ठिर ही अपना प्राणदायक व्यक्ति लगा, क्योंकि वह जानता था कि युधिष्ठिर सत्यवादी है। झूठ तो वे कभी भी नहीं बोलेंगे। मेरी जीवन रक्षा उनके द्वारा ही हो सकेगी। वे ही उस उपाय को जानते हैं जिससे मेरे प्राण बचें। यह विचार करके दुर्योधन युधिष्ठिर के पास पहुंचा। सीधा उनके पास गया और जाकर सपाट शब्दों में - बिना किसी लाग - लपेट के उसने युधिष्ठिर से अपनी प्राण रक्षा का उपाय पूछा। उसे ज्ञात था कि धर्मराज कहलाने वाले युधिष्ठिर यदि उस उपाय को जानते होंगे तो वे अवश्य बता देंगे। उनके निकट शत्रु-मित्र का भेदभाव नहीं है। सत्य के पालन में वे किसी भी प्रकार की ढ़ील नहीं रखते। धर्मराज भी यह जानते थे कि दुर्योधन उनका शत्रु है। दोनों पक्षों का संग्राम चल रहा है। वे चालाकी से काम ले सकते थे। भेद नहीं बताते, तब भी 'युद्धे प्रीतौ च सर्वमुचितं'' इस नीति के द्वारा उनके सत्य पर आंच नहीं आती, लेकिन इतने पर भी उन्होंने भेद बता दिया। वह भेद उनके अतिरिक्त जो केवल कृष्ण जानते थे और कृष्ण द्वारा ही दुर्योधन को ज्ञात हुआ था कि युधिष्ठिर को मेरी प्राण रक्षा का उपाय पता है - वह भेद धर्मराज युधिष्ठिर ने उसको वता दिया। कितनी सरलता, कैसी निष्कपटता और शत्रु पर भी समभाव कितना उत्कृष्ट आदर्श है यह! आप ज़रा इस बात को चिन्तन करके देखें। युधि

ष्ठिर ऐसा कोई उपाय कह देते जिससे कि दुर्योधन खुद अपने ही हाथ से मरे, लेकिन नहीं, यह उनके सत्याचरण के विरूद्ध था। वे बोले - "देखो दुर्योधन, उपाय बहुत सरल है। तुम्हारे प्राणों का रक्षक तुम्हारे घर में ही मौजूद है।" दुर्योधन की जिज्ञासा के उत्तर में वे बोले - "यदि तुम माता गांधारी के सामने से निर्वस्त्र निकल जाओ और माता गांधारी तुमको एक तीक्ष्ण दृष्टि से उस समय देख ले, तो तुम्हारा सारा शरीर वज्र का हो जाएगा। फिर तुम्हारे शरीर पर किसी भी शस्त्र का असर नहीं होगा। तुम अजेय बन जाओगे?" बन्धुओं, गांधारी पतिव्रता स्त्री थी। शीलधर्म से उसकी दृष्टि में इतनी पवित्रता भर गई थी - उसमें ऐसी शक्ति आ गई थी कि उसके देखने से दुर्योधन का शरीर वज्रमय बन जाए। पर पुरुष उसकी ओर देखे, ऐसी किसी भी व्यक्ति की सामर्थ्य नहीं थी। जिस किसी को भी गांधारी संकल्प पूर्वक देख लेती थी वही वज्रमय हो जाता था। युधिष्ठिर ने कहा - "दुर्योधन, बस यही उपाय है। गांधारी के देखने से तुम्हारा शरीर वज़्रमय हो जाएगा तब कोई भी तीर, तलवार, गदा उस पर असर नहीं कर सकेगी।" अर्जुन का गांडीव भी नहीं? दुर्योधन ने पूछा। युधिष्ठिर ने कहा - "हाँ, वह भी नही।" यह सुनकर दुर्योधन खुश हो गया - "आप झूठ तो नहीं कह रहे हैं?" उसने शंका का समाधान करना चाहा। युधिष्ठिर ने कहा - "मैं असत्य कह सकता हूं? तुम्हें विश्वास है?" दुर्योधन वहां से चला। मन में अनेक प्रकार के विचार आ रहे थे। उसको विश्वास था कि युधिष्ठिर झूठ नहीं, बोल सकते। दूसरी ओर वह यह भी जानता था कि मेरी माता गांधारी शीलवती नारी है। अतः उसे युधिष्ठिर द्वारा बताई हुई

बात जंच रही थी। सत्य प्रतीत हो रही थी। उसे विश्वास हो रहा था कि मेरी माता में अवश्य वैसी शक्ति हो सकती है, जैसी धर्मराज ने बताई है। दुर्योधन प्रसन्न मुद्रा में चलता जा रहा था कि कृष्ण मिले। पूछा - "दुर्योधन बड़े प्रसन्न लग रहे हो? क्या मिल गया? दुर्योधन ने प्रफुल्लित होकर उत्तर दिया - "जो मिलना चाहिए था, वह सब मिल गया है। श्री कृष्ण के पूछने पर उसने सब बात बता दी, अपने अपराजेय होने की खुशी वह छिपाता भी कैसे? श्रीकृष्ण जान गए कि भोले ध र्मराज ने सब भेद इसको बता दिया है। श्रीकृष्ण ने दुर्योधन से कहा - "उपाय तो तुमको धर्मराज युधिष्ठिर ने बता दिया है और तुम कर भी लोगे, लेकिन कुछ व्यवहार का भी ध्यान रखना। इतने बड़े होकर माँ के सामने निर्वस्त्र जाना क्या ठीक रहेगा? यह तो नीति विरूद्ध है। जरा लंगोट पहन लेना या कौपीन लगा लेना। इसमें कुछ हर्ज नहीं है।" पहले तो दुर्योधन नहीं माना लेकिन कृष्ण ने अपनी तर्क युक्त बातों से उसे मना ही लिया। श्रीकृष्ण बोले - "तुम अब बच्चे नहीं हो। बड़े हो चुके हो। कुछ तो ख्याल करो। माँ के समक्ष वस्त्रहीन होकर जाना ठीक नहीं रहेगा। लंगोट तो पहन लेना चाहिए। इतनी सुरक्षा तो करनी ठीक रहेगी।" दुर्योधन ने सोचा - "कोई बात नहीं, लंगोट पहन लूंगा। बाकी का शरीर तो वज्र का बन ही जाएगा। उतनी जगह रह भी जाए तो कुछ हानि नहीं है। नीति की सुरक्षा भी हो जाएगी।" अपनी भावना को क्रियान्वित करके दुर्योधन अपनी माँ गांधारी के समक्ष पहुंचा। उसने कहा - "माँ एक बार मेरी ओर देख लो, आपके देखने से मेरा शरीर वज्रमय हो जाएगा।" गांधारी ने विचार किया- "क्या मुझमें

ऐसी शक्ति है? मुझे तो ज्ञात ही नहीं था। इसको देख लेने से इसका शरीर वज्र का हो जाएगा, यह अजेय बन जाएगा, लेकिन ऐसा कैसे संभव है? बेशक मेरा पुत्र है लेकिन मैं जानती हूं कि यह अन्यायी है। इसकी विजय किस प्रकार हो सकती है, लेकिन धर्मराज के वचन भी मिथ्या नहीं हो सकते।" मन में विचार चलते हैं और बेटे का मोह भी था उसकी ओर देख लेती है। दुर्योधन ने कौपीन धारण कर रखा था, शेष देह निर्वस्त्र थी। गांधारी के देखते ही उसका सब शरीर वज्रमय हो गया। कौपीन से ढका शरीर ही कच्चा रह गया। दुर्योधन ने अपने ही मुक्कों द्वारा अपने शरीर पर खूब प्रहार किया। परीक्षा करके देख लिया। उससे जरा भी पीड़ा नहीं हुई। उसे विश्वास हो गया कि युधिष्ठिर की कही हुई बात यथार्थ थी।

दूसरे दिन वह छिप कर नहीं बैठा। ललकारता हुआ पाँडवों के समक्ष जा पहुंचा। अब उसे क्या डर था? भीम बाहर आया। दोनों का गदायुद्ध होने लगा। भीम ने दुर्योधन के पीठ पर, सीने पर, सिर पर सभी जगह गदा का प्रहार किया, किन्तु उसके चोट क्या लगती? वह तो वज्रमय शरीर के साथ युद्ध में आया था। भीम गदा मारे तो गदा झन्नाहट की आवाज करके लौट आए। वज्र पर मारो तो क्या उसके लगेगा? जो भी वार करे वह टकरा कर लौट आए। भीम हैरान हुआ। उसकी कुछ समझ में न आया। सहसा उसे याद आया अथवा श्रीकृष्ण ने संकेत किया इस प्रकार भी किसी - किसी कथा भाग में वर्णन आता है। दुर्योधन की जंघा पर प्रहार करने का संकेत श्रीकृष्ण ने किया यह भी कहीं आता है। कहीं पर यह भी आता है कि उसे अपनी प्रतिज्ञा

याद आई। जब द्रौपदी का चीरहरण हो रहा था, तब दुर्योधन ने द्रौपदी को अपमानित करते हुए यह कहा था - "मेरी जंघा पर आकर बैठ जा, मेरी महलों की शोभा बन।" इस प्रकार की बातें की थीं। तब द्यूत क्रीडा में हारे हुए पांडव विवश दांत पीसते हुए रह गए थे। दुर्योध न कह कहे लगा रहा था। द्रौपदी दीन स्वर में विलाप कर रही थी। बलपूर्वक द्रौपदी को अपनी जंघा पर बैठाने की जब दुर्योधन ने भरी सभा में कुचेष्टा की थी, तब भीम को रोष आ गया था। भीम ने उसी समय उठकर प्रतिज्ञा की थी - "आज तो मैं अवश बना हुआ हूं, लेकिन दुर्योधन एक दिन तेरी जंघा अपनी गदा के प्रहार से तोड़नी है मुझे। तेरे दुस्साहस का मजा तुझे अवश्य चखाना है।" उस समय की अपनी प्रतिज्ञा तब भीम को याद आई अथवा श्रीकृष्ण ने संकेत किया कि यह इस प्रकार नहीं मरेगा अपनी प्रतिज्ञा को याद करो इसकी जंघा पर प्रहार करो। दोनों ही बातों का समन्वय कर लें तो निष्कर्ष यह निकलता है कि दुर्योधन की जंघा पर भीम ने प्रहार किया और चूंकि वह स्थान वज्र का नहीं हुआ था, इस कारण से उसी प्रहार से दुर्योधन की मृत्यु हुई। वह गदा लगते ही वहीं ढेर हो गया। यह प्रसंग तो विस्तृत है। मूल बात मैं कह रहा हूं कि सत्यवादी युधिष्ठिर पर दुर्योधन का कितना विश्वास था। दूसरी बात यहां यह भी समझने की है कि शील में कितनी शक्ति होती है। अगर व्यक्ति अडोल - अकम्प भाव से शील में रमण करे तो उसके भीतर में बहुत बड़ी शक्ति का जागरण होता है। यह अलग बात है कि उस शक्ति का उपयोग कहां किस रूप में किया जाएं। सत्य में वह सामर्थ्य है कि सत्यवादी व्यक्ति सभी का प्रिय - विश्वसनीय

बन जाता है कि उसका वचन प्रामाणिक माना जाता है। प्रभु ने फरमाया है कि सत्य के पालन से बड़ा तप नहीं है। शास्त्रकार कहते हैं कि यदि पूर्ण रूप में सत्य का पालन कर सकें तो बहुत उत्तम है, अन्यथा निरर्थक वचनों का प्रयोग तो वर्जित कर ही देना चाहिए। जरा-जरा सी बातों के लिए झूठ बोलकर कर्म बंधन कर लेते हैं। सत्यवादी निर्भय होता है। झूठे को भय लगा रहता है कि कहीं मेरी बात पकड़ी न जाए। कहा भी है - झूठो सो डरे, पाको सो खरे।' सत्यवादी क्यों डरेगा? असत्यवादी ही डरता है। सत्यवादी को किसका डर? जहां भय है, वहीं कर्म बंधन होता है। इसका कारण यह है कि आत्मा प्रमाद में चली जाती है और प्रमाद होते ही कर्म बंधन हो जाता है। इस विषय को आप थोड़ा समझने का प्रयास करें। मनन करें, अनुशीलन करें और व्यर्थ के असत्य भाषण से बचने का प्रयास करें। जितना संयम रख सकें उतना वाणी पर संयम रखें। सत्य का आचरण करें। हमारा तो बंधुओं, यही संकेत है कि सभी शुभ भावों को अधिकाधिक जीवन में लाने का प्रयत्न करें। आप सभी इन बातों को अनुशीलन में लायेंगे तो आपका जीवन धन्य बनेगा, इसी शुभ कामना के साथ ...

17 अक्टूबर,1989

हमारी मुक्ति की साधना में कुछ उपादान कारण हुआ करते हैं और कुछ निमित्त कारण होते हैं। हमारी आत्मा में रहे हुए अनन्त ज्ञान, दर्शन, चारित्र ही परिपूर्ण विकसित होकर मुक्ति के रूप में बदल जाते हैं। इस अपेक्षा से आत्ममुक्ति में आत्मिक गुण हुए उपादान कारण और उपासना, शास्त्रश्रवण, सत्संग, संत दर्शन आदि ये हुए निमित्त कारण, क्योंकि ये सभी आत्मदर्शन में मुक्ति की उपलब्धि में सहायक बनते हैं।

5. निमित्त और उपादान

(तर्ज : चला रे हंसा ......)

मानव का जीवन एक यही मुक्ति द्वार।

(प्रार्थना पूर्ववत्...)

मुक्ति की ओर :

गीतिका की पंक्तियों में अन्तर्मन की प्रबल अभीप्सा - मुक्ति की आकांक्षा के महत्त्व को उभारा गया है। मुक्ति साधना के विभिन्न अंगों में कुछ अंग उपादान कर्म बनते हैं और कुछ निमित्त कारण बनते हैं। उपादान कारण और निमित्त कारणों के विषय में पूर्व में आपको बताया गया था कि उपादान कारण वे होते हैं, जो कार्य रूप में परिणत हो जाते हैं और जो कार्य की संपूर्ति में सहयोगी मात्र बनकर अलग हट जाते हैं, वे निमित्त कारण कहलाते हैं। संसार के प्रत्येक कार्य में दोनों ही प्रकार के कारणों का संयोग रहता है। यह मकान बना है। इस बिल्डिंग के बनने में भी उपादान और निमित्त - दोनों प्रकार के कारण रहे हुए हैं। यह ईंट-चूना-पत्थर से बनी है, किंतु ईंट, चूने और पत्थर को इकट्ठा करने मात्र से यह बिल्डिंग नहीं बन गई इसके निर्माण में कारीगरों की भी आवश्यकता पड़ी, कलाकार और औजारों की भी जरूरत पड़ी। जो ईंट, चूना आदि मकान के रूप में बनकर खड़े हुए उन्हें उपादान कारण कहा जाता है और जो औजार अथवा कारीगर इस उपादान कारण में निमित्त कारण बन कर अलग हट गए, वे निमित्त कारण हुए। निमित्त रूप में बनने

वाले कारण सहयोग देते हैं। वे उपादान कारण की तरह स्वयं कार्य बनकर रूपांतरित नहीं होते। वस्त्र बुनने के कार्य में रूई व धागे को उपादान कारण कह सकते हैं क्योंकि रूई या धागा ही वस्त्र रूप में रूपांतरित होता है। बुनकर कारीगर और बुनने की शीन ये सभी सहयोगी कारण है - निमित्त कारण हैं। उसी प्रकार हमारी मुक्ति की साधना में भी कुछ उपादान कारण हुआ करते हैं और कुछ निमित्त कारण होते हैं। हमारी आत्मा में रहे हुए अनन्त ज्ञान, दर्शन चारित्र और आत्मा ही परिपूर्ण विकसित होकर मुक्ति के रूप में बदल जाते हैं। इस अपेक्षा से आत्ममुक्ति में आत्मिक गुण हुए उपादान कारण और उपासना, आराधना, शास्त्रश्रवण, सत्संग, संत दर्शन आदि ये हुए निमित्त कारण, क्योंकि ये सभी आत्मदर्शन में, मुक्ति की उपलब्धि में सहायक बनते हैं।

आत्ममुक्ति के लिए शरीर क्या है? उपादान है अथवा निमित्त कारण है? मानवशरीर मुक्ति का निमित्त कारण है। इसी तरह ये साधना के उपकरण - मंडोपकरण आदि निमित्त कारण बनते हैं। वैसे मूल कार्य तो उपादान से ही - ज्ञानादि से ही बनता है, किंतु निमित्त कारणों को भी उपेक्षणीय नहीं कहा जा सकता। रोटी बनाने के लिए केवल वेलन - चकला आग आदि ही काम नहीं देते, उसके लिए आटा भी चाहिए। यह तन-यह मनुष्य तन ही मुक्ति में निमित्त है यह नहीं कहा जा सकता, उपादान कारणों की भी आवश्यकता पड़ती है, किन्तु वह सव मनुष्य तन की प्राप्ति होने पर ही प्रभावी बनते हैं, इसी कारण से मनुष्य जीवन को मुक्ति प्राप्ति का मुख्य साधन माना है। यही भाव गीतिका के मा॰ यम से व्यक्त हुआ है -

मानव का जीवन, एक यही मुक्ति द्वार।
विषयों में ही खोता इसको, वह तो मूढ़ गँवार।।
मानव......

इस तन के द्वारा ही देवलोक के सुख भोगे जा सकते हैं। देवलोक तो केवल भौतिक सुख भोगने का - कमाए हुए पुण्यों को भोगने का स्थान है। नरक और तिर्यंच दुःख भोगने का स्थान है। एक ओर पुण्य कर्म का प्रकर्ष है तो दूसरी ओर पाप का प्रकर्ष है। मनुष्य जीवन मध्यस्थ - बीच की स्थिति है। न अधिक पुण्य, न अधिक पाप। यह जीवन मध्यम है। इस जीवन में अधिक साधना बंधन मुक्ति की करनी है। गीतिका में उद्‌बोधन दिया गया है। मनुष्य जीवन में मुक्ति - आराधना का संदेश दिया गया है-

फिर भी मानव तन में आकर, जो न करे शुभ काट।
विषय कीट बन जीवन खोता, पाता है दुःख अपार।
मानव...

अवसर मिला तुझे अणमोला, करले कुछ श्रेयकार।
मोक्ष मार्ग की साधना करले, चिर शान्ति दातार।।
मानव....

गीतिका में कहा जा रहा है मानव तूने देवयोनि में अनेक प्रकार के भोग भोगे। वहां तेरे शुभ कर्मों का पारावार नहीं था, लेकिन उस स्थिति में भी तू साधना नहीं कर सका। देवता एक नवकारसी भी करने में विवश है। वह कोई व्रताराधन नहीं कर सकता। नरक गति में भी साधना नहीं बनी। सारा समय रोने में ही बीत जाता था। उस समय नरक के घोर

दुःखों को भोगते हुए तू बराबर आर्तध्यान व रौद्रध्यान करने में लगा रहा। तिर्यंच गति में भी साधना का अवसर नहीं मिला। साधना के लिए - आराधना के लिए यही नरजीवन मिला है। हम यदि सोचें कि यह जीवन मौज- मजे के लिए मिला है, तो यह भ्रान्त धारणा है। देवलोक का शरीर भोग भोगकर समाप्त हो गया। वह पुण्य था उसे हम क्षीण कर चुके। दुःख भार ढोने को दूसरी योनि - नरक गति या तिर्यंच गति की प्राप्ति भी हुई उसे भी रोने - धोने में बिता दिया। यह जीवन केवल साधना के लिए उपलब्ध हुआ है, लेकिन कितनी साधना कर पाते हैं? यह अपने-अपने विचार करने का विषय है। जो तत्व जिसके लिए हैं, यदि उसका उसी में उपयोग हो तभी वह सदुपयोग कहा जाता है। यदि उसका उपयोग दूसरे में कर लिया जाए तो वह गलत उपयोग होगा। बढ़िया रत्न कंबल हो, यदि उसे गरमी के दिनों में ओढ़ लें तो क्या सही उपयोग होगा? उसका उपयोग तो सर्दी के मौसम में हैं। तभी वह उपयोगी हो सकता है। गरमी में तो परेशानी का कारण ही बनेगा। यह बात एक सामान्य व्यक्ति भी सोच सकता है। बहुमूल्य हीरा किसी को मिल जाए और वह उससे चटनी पीसने का काम लेने लगे तो उसे क्या कहेंगे? ये बातें साधारण बुद्धि वाला व्यक्ति भी जानता है, लेकिन अपने जीवन के मूल भूत सिद्धान्त को हम भूल जाते हैं। उसे याद नहीं रखते। इस जीवन का उपयोग सही कर रहे हैं या गलत कर रहे हैं, यह पता नहीं चलता। आनन्द मल जी? धींग साहब? सही उपयोग कर रहे हो जीवन का? कोई यदि कर भी ले तो 60 प्रतिशत भाग तो गलत कार्यों में ही लग जाता है। किसी ने 50 किसी ने 60 वर्ष खो दिए जीवन के। बासॉ कितने खोए? 73 वर्ष। इतने समय

तो सही उपयोग न हो सका। सही उपयोग मुक्ति मार्ग की आराधना है। गलत दिशा में जीवन चलता रहा। हीरे से चटनी पीसने जैसी बात ही तो हुई! इससे बढ़कर कुछ भी नहीं किया। साधारण कार्य - पेट भरना, परिवार - पालन करना, रोते झींकते जीवन बिता लेना और फिर मर जाना। क्या यही है जीवन का सही उपयोग? इतना जीवन इसी में चला गया। किसी भी प्रकार से इसे सही नहीं कह सकते हैं। मान लो आपकी कपड़े की दुकान है। आप घर में कार्य करने वाले अकेले हैं। माल लाना है, अतः आप दुकान बंद करके माल खरीदने जाते हो। मार्केट खुला .. उसी समय कोई साथी मिल जाए, वह कहे - ''चल यार पिक्चर देखेंगे, होटल चलेंगे, मटर गश्ती करेंगे तब आप क्या करेंगे? उसके कहने में आकर घूमने चल देंगे। तब उससे क्या कहेंगे - ''काम समाप्त करके जल्दी भागना है भाई घर जाना है। दुकान संभालनी है। खर्च निरन्तर बढ़ रहा है। इनकम कम हो रही है। ग्राहक आयेगा। सारा जमा खर्च बता दोगे - ''दुकान का भाड़ा बढ रहा है। नौकर का वेतन सदा चढ़ता रहता है। ग्राहक आये या नहीं आए, नौकर को तो वेतन देना ही पड़ता है। माल स्टॉक में पड़ा है। ब्याज लग रहा है। इनकम तो तभी होगी जब दुकान पर समय देंगे भैया।'' नाटक सिनेमा सूझेंगे क्या उस समय? तुरता फुरत माल लेकर काम निपटाकर वहाँ से जाने की दुकान पर पहुँचने की कोशिश करोगे। ''माल खरीदो और चलो। ऐसे में समय को व्यर्थ नहीं खोना है।'' यही भाव होंगे आपके उस समय। साथ का कोई मित्र यदि शहर में 4-5 बाजारों में घूम कर चीजें खरीदना चाहे और सिटी बस में टाइम लगता हो, तो दो-चार घंटे के लिए टैक्सी ले ले। निकल पड़े

अलग-अलग मार्केट में। चार - छः मार्केट घूमे कि मित्र कहे -"भाई, चलो किसी होटल में - चाय पानी कर लें या नाटक पिक्चर देख ली जाए। घूमते - घूमते थक गए। तब क्या कहोगे? - "नहीं भाई, गाड़ी का किराया चढ़ रहा है। मैं दो घंटे के लिए टैक्सी किराए पर लाया था। मैं नहीं आ सकता।" सोचिए जरा, महत्त्वपूर्ण किसे माना? समय को माना! खरीददारी को गए। टैक्सी ली कि समय व्यर्थ न जाए। घूमने, नाटक देखने भी इसी कारण नहीं गए कि समय महत्त्वपूर्ण है। कितना ध्यान रखा लेकिन जीवन के विषय में कभी सोचा? कभी यह विचार किया कि जीवन साधना के अतिरिक्त व्यर्थ के कार्यों में न जाए। दुकान व्यवसाय के लिए सभी बातें सोचते हो, लेकिन आत्मा के कल्याण की बात नहीं बन पाती। ऐसी स्थिति में जीवन व्यर्थ - निरर्थक चला जा रहा है। यह अन्तरंग से सोचने का विषय है। संत बार-बार सावचेत करते हैं समझाते हैं कि मान लो जवानी खो दी, वृद्धावस्था आ गई - अब भी कुछ नहीं बिगड़ा है। अभी भी समय है। संभल जाओ। प्रभु ने कहा है-

पच्छावित्ते पयाया खिप्पं, गच्छंति अमरभवणाईं।
जेसिं पियो तवो संजमोय खंतिय वंभचेरं च॥

क्या कहा? पश्चात् अवस्था में भी यदि पयार्य सुधर गई, भक्ति श्रद्धा द्वारा संयम में प्रवेश हो गया - तब भी कहाँ जायेंगे? अमर भवनों में - पाँचवें, सातवें, दसवें देवलोकों में। उस हालत में भी देवलोक मिलने के चाँस है लेकिन किसको मिलेगा देवलोक? साधना में मूल अंग जिसको प्रिय है, वही देवलोक तक जा सकता है। शास्त्रकार सजग - सावधान कर रहे हैं कि पिछली अवस्था को भी सुधार लो। जो समय

बीत गया वह तो गया - जो कुछ बचा है उसे ही ठीक प्रकार सार्थक कर लो, लेकिन वह भी कठिन लगता है। यहां एक घंटा बैठने पर थोड़ी भाव - शुद्धि होती अवश्य है, किन्तु उसके बाद क्या होता है? यहां से उठे कि भूल गए। सब विस्मृत हो गया। इस तरह जीवन की बहुमूल्यता सफल करेंगे आप? मानव जन्म पाकर वैसे ही खो दिया, जैसे हीरे से चटनी पीसने का कार्य किया जाए। सही उपयोग नहीं कर पाए। हमारा तो संकेत है कि जितना भी कर सको अपने जीवन को मर्यादित बनाओ। श्रावकव्रत लो - आस्रव रोको। प्रतिदिन यही सब हम कह देते हैं और आप सुन लेते हो, लेकिन तत्वज्ञान की बातें समझ में आएँ तब न?

सत्यव्रत स्थूल रूप में :

सुबाहु कुमार का प्रसंग चल रहा था। उसको तत्व समझ में आ गया था। व्रतों की व्याख्या चल रही थी। मैं आपके समक्ष सत्य की महिमा रख रहा था। मैंने कल बताया था कि सत्य ही भगवान है - सारभूत तत्व है। श्रावक स्थूल असत्याचरण से बचता है, सूक्ष्म से नहीं बच पाता है। जीवन में अनेकों प्रसंगों पर असत्य का आचरण हो जाता है। व्रत लेने का भाव यही है कि कम से कम स्थूल असत्य से तो बचा जाए। इसी से इन व्रतों को स्थूलव्रत कहते हैं। सुबाहु कुमार इसके अन्तर्गत क्या संकल्प करता है? वह कौनसे झूठ नहीं बोलने की प्रतिज्ञा करता है? यदि राजदंड, लोकदंड, अप्रीति की स्थिति हो किसी को आघात पहुंचे, किसी का नुकसान हो - ऐसे भाव में झूठ नहीं बोलूंगा। कम से कम अनर्थादण्ड की क्रिया से तो बचूँगा। इन सभी प्रकार के असत्यों को पांच भागों में विभाजित कर दिया गया है - कन्नालिए, गोवालिए, भोमालिए,

णासावहारे, कूड़ सक्खिजे – ये पांच भेद किए। पहला क्या? कन्नालिए। कन्या के लिए झूठ नहीं बोलना। यह व्रत का विवेचन है। कन्या के लिए नहीं बोलना, तो क्या लड़कों के लिए झूठ बोलना चाहिए? यहां 'कन्नालिए' का अर्थ है कि कन्या यानि स्त्री जाति को प्रथम माना। आप यह समझ लें कि शास्त्रों में उपलक्षणामात्र शब्द होते हैं। एक शब्द में सारे अर्थ समाहित होते हैं। कन्या को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया क्योंकि सारी सृष्टि का आधार स्त्री है। जब जड़ का सिंचन किया जाएगा, तो टहनी, फल, फूल, पत्तों को अलग से सींचने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। समझ गए आप? जड़ को नहीं सीचें तो पत्ते, फल-फूल आदि सभी सूख जाएं। स्त्री को संसार का आधार – मूलभूत कारण मान कर ही यहां महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है। दूसरी बात कि स्त्री को पाश्चात्य भी माना है। यदि कोई नौका पानी मे चल रही हो। उसमें पुरुष - स्त्री सभी सवार हों और वह नौका डूबने लगे तो पहले कन्या को – स्त्री को बचाने का प्रयास होगा। पुरुषों से पहले उसकी सुरक्षा होगी। इस रूप में मूल को प्राथमिकता दी। मानव जाति का समष्टि भाव 'कन्नालिए' शब्द में समाहित कर लिया गया है। कन्या के लिए झूठ नहीं बोलने का अर्थ है कि किसी भी प्राणि के लिए झूठ नहीं बोलना है। सुबाहु कुमार कहता है – "भगवन्, मैं यह प्रण तो नहीं कर सकता कि किसी के लिए भी असत्य न बोलूं लेकिन राजदंड, लोकभय, अप्रीति होती हो ऐसा झूठ बोलने का त्याग करता हूं।"

दूसरी बात बताई – गोवालिए। इसका मतलब क्या? गौ से उपलक्षण द्वारा सारे पशुओं को ले लिया। गाय को महत्त्वपूर्ण माना है, वेदों में भी

गाय को महान् बताया है। कहा है -

गाव स्त्रैलोक्य मातरः।

वैदिक संस्कृति में गाय को माता मानते हैं। सारे संसार की माँ बताया गया है। गाय में 33 करोड़ देवताओं का निवास बताया है। किसमें? गाय की पूंछ में। गाय का महत्त्व इस रूप में मानते हैं कि यह सभी जगत् के जीवन - संचालन का आधार है। दूध भी देती है- दूध से घी - मक्खन प्राप्त होता है। बछंड़े खेती में काम देते हैं। मशीनें आ गई तब भी कृषि कार्य में बैलों की जरूरत पड़ती है। मशीनें कितना करेगी और दूध क्या मशीनों से निकलेगा? देगी मशीनें, दूध तो गाय ही देगी न? मशीनें दूध नहीं दे सकती। गाय से ही दूध, घी - अनाज - सब्जियाँ प्राप्त होता है। इस रूप में गाय तीन लोक की माता कही जाती है। गाय को सभी का आश्रय माना है। बाकी सारा पशुधन गाय में आ गया। किसी पशु के लिए झूठ बोला तो उसे गोवालिए में गिना जाएगा। तीसरा क्या बताया? भोमालिए। भूमि के लिए झूठ नहीं बोलना। कन्या मानव मात्र की प्रतीक, गाय पशुमात्र की प्रतीक है। वैसे उसकी भी व्याख्या द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव के अनुसार की गई है। द्रव्य से कन्नालिए का अर्थ है कि कोई कन्या सुदंर हो, रूपवान हो, उसका शरीर स्वस्थ हो, लेकिन कारण विशेष से उसके विषय में असत्य बोल देना। किसी से यह कहना कि वह कन्या तो कुरूप है, खानदानी नहीं है अथवा उसके ऊपर कोई मिथ्या आरोप लगाना- यह द्रव्य से झूठ बोलना है। क्षेत्र से कन्नालिए क्या? कोई कन्या किसी क्षेत्र की हो और किसी अन्य जगह की बता देना यह क्षेत्र से असत्य भाषण हुआ। काल से झूठ, उसकी आयु के विषय में झूठ बोलना है।

22 वर्ष की हो मगर 15 वर्ष की बता देना। भाव से झूठ क्या कन्या के विषय में उसके गुण, शील, चारित्र निष्ठा आदि को झूठ घटा बढ़ा कर कहना। अच्छे गुण होने पर भी दुर्गुणों का आख्यान करना - यह भाव से कन्नालिए के अन्तर्गत आता है।

इसी तरह से भूमि में उपलक्षण से सारे पदार्थ आ गए। भूमि भी और समस्त पदार्थ - जिनका आधार भूमि है - जो भूमि पर उत्पन्न होते हैं - वे सभी पदार्थ 'भोमालिए' पद में समाविष्ट हो गए। अगला असत्य का भेद है णासावहारो अर्थात् न्यास अपहरण करना। न्यास का अर्थ धरोहर होता है। किसी की कोई वस्तु आपके पास रखी है। उसे अपहृत कर लेना, वापस उसके स्वामी को न देना - यह णासावहारो झूठ है। इसी को थापणमो सा भी कहते हैं। पांचवे भेद में कूड सक्खिजे बताया। इसका मतलब है झूठी साक्षी देना। आजकल मिनटों में झूठी गवाही के लिए लोग तैयार हो जाते हैं। यह भी असत्य के अन्तर्गत आता है। मैं दूसरा स्थूल व्रत - सत्य व्रत स्थूल रूप में समझा रहा हूं। इसके स्थूल रूप से असत्य का त्याग हो जाता है। श्रावक स्थूल रूप में झूठ नहीं बोलता। इस पाप से बचता है। सुबाहु कुमार सत्य व्रत स्वीकार करता है। समझ लो कि जब जीवन में एक सत्य का गुण आ गया तो सारे गुण आ गए। नीतिकार कहते है :-

सर्वे सत्यें प्रतिष्ठित।

यानि सारे सद्गुण सत्य में प्रतिष्ठित हैं। एक सेठ का लड़का दुर्व्यसनों में फंस गया। मद्य, वेश्यागमन, जुआ सभी प्रकार के दुर्व्यसन उसको लग गए। सेठ ने बहुत समझाया किन्तु वह अपनी आदतों को छोड़

न सका। उसकी माँ ने भी काफी समझाया पर वह तो कुसंगति से बाज न आया। सेठ जी स्थानक में जाते थे। धर्म ध्यान करते थे। एक दिन सेठ ने संत - महात्मा के चरणों में बैठ कर अपना दुखड़ा सुनाया। वे बड़े विचारक संत थे। उन्होंने कहा - "सेठ, तुम एक बार उस लड़के को हमारे सामने तो लाओ। हम उसे समझायेंगे।" सेठ बोला - "लाऊँ कैसे, वह तो धर्म का नाम ही नहीं सुनना चाहता। संतो के दर्शनों से ही घबराता है। कहता है, वहां जाओ तो वे त्याग कराते हैं। यही कहते हैं-वह छोड़ो।" मुनि श्री ने कहा - "आप एक बार ले तो आइये।" सेठ ने अपने लड़के से स्थानक चलकर मुनियों के दर्शन करने को कहा। वह तो स्पष्ट इनकार करता हुआ बोला - "मुझे नहीं जाना है कहीं। वहां जाकर तो केवल त्याग करने की ही बात होती है।" सेठ ने कहा - "बेटा, तुम कोई त्याग मत लेना। केवल दर्शन करने चलो।" बहुत कहने पर वह तैयार हुआ।

स्थानक में आकर उसने मुनिराज के दर्शन किए। मुनिश्री ने उससे बात की। उन्होंने कहा - "भाई, कुछ छोड़ने की बात हम नहीं करते। यदि कहें तो ग्रहण करने की बात मानोगे न?" वह बोला - "हाँ, ग्रहण कर सकता हूं, मगर कुछ छोडूंगा नहीं।" मुनिश्री ने कहा - "देखो भाई, तुम में जितने व्यसन हैं, जो तुम्हारी आदतें हैं - वे एक भी मत छोड़ो। शराब जितनी चाहे, उतनी पियो, माँस - अंडा खाते हो- इच्छानुसार खाओ - अन्य भी जो तुम्हारे शौक हैं, उनमें से किसी को मत छोड़ो। एक बात हमारे कहने से ग्रहण कर लो।" वह बोला - "कहिए, क्या ग्रहण करना है?" मुनिराज ने कहा - "सारी अपनी चर्या पूर्ववत् रखो,

बस तुम झूठ मत बोलना। सत्य बोलने का व्रत ग्रहण कर लो। कैसी भी स्थिति हो, तुम झूठ नहीं बोलना।'' लड़के ने स्वीकार कर लिया। मुनिश्री ने उसे सत्य बोलने का संकल्प करा दिया। प्रतिज्ञा करा दी कि असत्य नहीं बोलना है।

वह लड़का घर आया। शाम के समय उसे शराव की तलव लगी। वह घर से निकला। सामने से उसकी माँ आ गई बोली - ''बेटा, कहाँ जा रहे हो?'' अब क्या कहे? माँ से कैसे कहे कि मैं शराब पीने जा रहा हूँ। कुछ और कहता है तो सत्यव्रत भंग होता है। वह मौन रहकर वापस घर में चला गया। पुनः थोड़ी देर में निकला तो सेठजी मिल गए। यही क्रम दो तीन दिन तक चलता रहा। उस स्थिति में वह जा नहीं पाता और समय बिताने को तथा अपनी व्यग्रता को शान्त करने के लिए धार्मिक पुस्तकें पढ़ने बैठ जाता। इसका प्रभाव यह हुआ कि उसकी बुद्धि और आदत दोनों सुधरने लगी। उसका जीवन बदल गया। इसी से कहा है कि सत्य में सभी सद्गुणों का निवास है। एक सत्यव्रत स्वींकार करने से उसके सारे दुर्गुण सहज में ही छूट गए। जीवन में वहुत वार हम व्यर्थ का असत्याचरण कर लेते हैं, उसको छोड़ा जा सकता है। मौलिकता - स्वाभाविकता में रहकर सत्य का पालन बखूवी किया जा सकता है। मौलिकता तो कुछ है और दिखावा कुछ और करते हैं, तभी असत्य आ जाता है। आप एकान्त में पैर फैलाकर बैठे हैं। मस्ती से कुछ कार्य कर रहे हैं, गुनगुनाते भी जा रहे हैं - सहसा किसी की पग - आहट आई तो आपकी वह स्वाभाविकता क्या होगी? एकदम सीधे होकर वैठ जायेंगे। एकान्त का वह मस्ती भरा पोज झट से बिगड़ जाएगा। जल्दी से ठीक -

ठाक होकर बैठ जायेंगे यानि मौलिकता कुछ और थी और अब कृत्रिमता कुछ और बन गई। मस्ती दूर हो गई उसकी जगह एक बनावटी सावधानी औपचारिकता आ गई। सत्याचरण को तलवार की धार के समान माना है, लेकिन जीवन का उच्चतम आधार बन जाता है।

जहां सत्य बात को सत्य की तरह ही स्वीकारा, कहाँ और आचरण किया जाता है, वहाँ सारे तनाव, संघर्ष, द्वन्द्व समाप्त हो जाते हैं। सत्य व्रत को स्वीकार करने में आप में किसी को भी कुछ कठिनाई नहीं है। जरा सी समझने की बात है। सत्य का महत्त्व तो विशद् है। बहुत विस्तृत है। मैं इस समय उस विस्तार में जाने की स्थिति में नहीं हूं। समय बहुत आ चुका है। संकेत रूप में केवल यही कहना है कि आप व्रतों के विश्लेषण को समझ कर यथाशक्ति उन्हें अपने जीवन में उतारने का प्रयास करेंगे तो आपका जीवन मंगलमय बनेगा....

18 अक्टूबर,1989

जब तक साधना में रस नहीं आता, तभी तक मन बाहर के पदार्थों में दौड़ लगाता है। जब अन्तर्मन का अद्‌भुत आनंद मिलने लगता है - उसका रसास्वादन होने लगता है, तब बाहर के भौतिक पदार्थों के प्रति अरुचि स्वयमेव होती जाती है। जब मन ब्रह्म के साक्ष्य को अनुभव कर लेता है - जब आत्मदरस की प्रतीति हो जाती है, उस समय मन बाहरी दौड़ - धूप बंद कर देता है। शर्त केवल यही है कि हमें वह आनंद लेना आना चाहिए। वह रस लेना आता नहीं इसी से ५० - ६० वर्ष तक साधना करने पर भी मन स्थिर नहीं रहता। हमें रस दूसरे पदार्थों में आता है, साधना में नहीं आता।

6. अनन्त चेतना शक्ति

(तर्ज : जन्म जन्म का साथ है ....)

अनन्त शक्ति भंडार है यह चेतन तुम्हारा,
यह चेतन तुम्हारा, यह चेतन तुम्हारा।
निज स्वरूप को भूल के क्यों तू भटके मारा - मारा।।अंनत....

निजघर में तो निधि पड़ी और खोज रहे तुम बाहर में,
बुढ़िया जैसे सूई ढूँढते क्या नहीं अपने घर में।
बाहर में ही भटक - भटक कर तू तो सब कुछ हारा।। अनंत..

कर में तो है चिंतामणि तुम दर-दर ठोकर खाते,
मरू मृग सम तुम तृष्णा वश हो माया में भरमाते।
अन्तर्दृष्टि से तुम देखो, शक्ति का नहीं पारा।। अनंत.....

खुद को भूले सदा ही तुमने जड़ तत्वों का ध्यान किया,
विषय वासना के दलदल में भौतिक सुख संधान किया।
निज अन्तर में कभी न फूटी वैराग्य रंग की धारा।। अनंत......

अब तो मानव सम्भल जरा निज शक्ति तू पहचान ले,
अनन्त ज्ञानी, अनन्त दर्शी तू खुद ही है जान ले।
निज 'शान्ति' पहचान जरा तू पाए मुक्ति द्वारा।। अनंत.........

अनुभवसिद्ध विषय :

गीतिका की पंक्तियों में चैतन्य देव की शक्ति के संदर्भ में

आलंकारिक संकेत प्रस्तुत किए गए हैं। अध्यात्म साधक अथवा आत्मारामी व्यक्ति जो आत्मा की अनन्त ज्ञानादिक शक्तियों पर पूरा विश्वास - पूरी आस्था करता है, वह जानता है कि चैतन्य आत्मा में विलक्षण शक्ति है - अनन्त सामर्थ्य है। बहुत से श्रुत, शास्त्र आदि पढ़ने वाला भी आत्मिक शक्तियों के पुंजीभूत विषय को ऊपर - ऊपर से जान पाता है, उसकी गहराई में उसकी पहुंच नहीं हो पाती, क्योंकि आत्मा का विषय इन्द्रियातीत है। वह तो अनुभवगम्य है। किसी बात को ऊपर से जान लेना अलग है और उसको सर्वतोभावेन अंतरंग से जानना और बात है। ऊपर - ऊपर से हम बहुत कुछ जानते हैं, लेकिन तथ्य की गहराई में कम ही व्यक्तियों की पैठ हुआ करती है। कुछ लोग विशेष ज्ञान दृष्टि से गहराई में पहुँच भी जाएँ तो वैसी श्रद्धान का जागरण नहीं हो पाता। विशुद्ध श्रद्धा बन पड़े तो विशुद्ध आचरण नहीं बनता। जो स्वयं साध्य क्रिया करके, साधना करके अपने अनुभव से ज्ञान प्राप्त किया जाता है, वह यथार्थ होता है, क्योंकि वह निज की प्रतीति से जुड़ा हुआ है। प्रवचन सुनकर, वीतराग वाणी का श्रवण अथवा अध्ययन करके जो कुछ ज्ञान होता है वह अन्तरंग का ज्ञान नहीं कहा जा सकता, क्योंकि उसमें अनुभव का रस नहीं होता स्वाध्यायादि करके भी जब तक अन्तर की अनुभूति उसके साथ न जोड़ी जाए, तब तक वह केवल शब्द विलास ही बनकर रह जाएगा। ज्ञानीजन कहते हैं कि साधना ही जीवन का सार है। जीवन की उपयोगिता साधना में ही रही हुई है। जब तक ऊपरी ज्ञान है - सतही जानकारी है, तब तक श्रद्धा सम्पुट नहीं है, तब तक वह जानना यथार्थ से दूर ही कहा जाएगा। यदि उस ज्ञान को अनुशीलन में ले आते हैं - अपने

आचरण में ढाल लेते हैं, तो वह ज्ञान हमारा अपना हो जाता है। उसका रस आत्मा में परिपूर्ण रूप से आने लगता है। जब तक साधना का रस नहीं आता, तब तक ज्ञान अधूरा है। एक पक्षीय और ऊपरी ज्ञान है। वह कहने मात्र का ही ज्ञान हो सकता है, साधना में उपयोगी बनने की सामर्थ्य उस ज्ञान में नहीं होती है।

सामायिक - साधना वर्षों से कर रहे हैं। कभी आपने सोचा कि जीवन गुजर गया साधना करते हुए, फिर भी सम्यग्दर्शन क्यों नहीं प्राप्त हो रहा है। कभी इस असफलता का कारण खोजने की चेष्टा की है? जहां 50 वर्ष पहले थे वहीं आज भी हैं। इंच भर भी आगे नहीं बढ पाए। इसकी वजह क्या है? उत्तर यही है कि वह सब क्रिया बाहरी ही रही - अन्तरंग की क्रिया नहीं बनी। शास्त्रीय भाषा में कहें तो द्रव्य साधना बहुत की, लेकिन भाव से साधना नहीं कर पाये, इसी कारण से आत्मा की गहनता को स्पर्श नहीं कर सके। कई बार हमसे पूछा जाता है - ''महाराज साहब, साधना करने बैठें तो स्थिरता नहीं रहती। सामायिक में मन एकाग्र नहीं रहता। यह एकाग्रता कैसे पैदा करें?'' बन्धुओं, एकाग्रता कहीं बाहर से आने वाली नहीं है, अपने में ही वह एकाग्रता के तत्व रहे हुए हैं। अन्तर केवल इतना है कि उनका प्रगटीकरण नहीं हो पाता। यदि साधना में रस आने लगे तो एकाग्रता स्वयं ही बन जाये। एकाग्रता न होने का मुख्य कारण है कि साधना को - सामायिक को आनंददायी मानकर यदि उसका स्वाभाविक रूप में अनुशीलन किया जाए तो स्वतः ही रुचि पैदा होगी और फलस्वरूप एकाग्रता होनी अवश्यंभावी है। राजमल जी? कितने वर्षों से कर रहे हो सामायिक? कुछ आत्मिक संतोष मिला? लगा

अपने आप में कुछ परिवर्तन? कितने वर्ष हो गए? 50 वर्ष! किसी को 50 किसी को इससे भी ज्यादा समय हो गया लेकिन साधना में गतिशीलता नहीं आई। क्यों? क्योंकि साधना को रोटीन वर्क (Routine Work) मान लिया है। वह एक आवश्यक हैबिट बन गई हैं। औपचारिकता की तरह सामायिक कर ली जाती है, बस। इससे आगे सामायिक का महत्त्व नहीं समझा, इसी से वह अन्तरंग के परिवर्तन का माध्यम नहीं बन पाई। दैनिक प्रक्रियाओं की तरह सामायिक भी अभ्यास की वस्तु बन कर रह गई है। प्रातः उठना, नवकार मंत्र गिनना, निवृत्त होना उसके बाद वेश बदल कर-कपड़े परिवर्तन करके सामायिक में बैठ जाना? अभ्यासवश सारी क्रियाएँ हो जाती हैं। मुंह पर पटी बांध लेते हो, सामायिक की पाटियाँ बोले लेते हो, लेकिन भीतर में कुछ भी नहीं बदलना। मन के द्वन्द्व - राग - द्वेष विकार पूर्ववत् जारी रहते हैं। उसी अवस्था में सामायिक पूरी हो जाती है। समय पूर्ण होने पर सामायिक पार ली जाती है। सामायिक कर ली, लेकिन उसमें साधना का कुछ भी रस नहीं पैदा हुआ। जब सामायिक और ज्ञानाराधना के प्रति रस पैदा हो जाता है, तब विशुद्ध जागरण की स्थिति बनती है। भावों का विशुद्ध संचालन होता है। वैसी भाव विशुद्धता अपने अध्यवसायों से ही होती है। संतों के प्रेरणा देने या उत्कृष्टतम क्रिया कर लेने पर भी अपने उच्च अध्यवसायों के बिना साधना में वह आनंद उत्पन्न नहीं होता। सतही अध्यात्म के आधार पर यदि सामायिक आदि क्रियाएँ केवल धार्मिक प्रतिष्ठा के लिए नहीं की जाए, अन्तरंग की प्रेरणा और कर्मक्षय की भावना को लेकर वे क्रियाएँ की जाएं, तो अवश्य ही अलौकिक आनंद की प्राप्ति हो सकती है।

साधना का दिव्य रस ऐसी अवस्था में ही आ पाता है। पहले वह श्रद्धा अंतरंग में जागृत होनी चाहिए, तभी स्वयं की स्थिरता और ध्यान की एकाग्रता बनती है। भँवरा फूलकर मंडराता है। जब तक वह ऊपर-ऊपर गुँजारव करता रहता है तब तक उसको पराग नहीं मिलता। जब वह फूल पर बैठ जाता है स्थिर होकर मधु पान में रत हो जाता है, तभी उसको रस का अनुभव होता है।

भँवरे के उदाहरण से एक बात और भी समझने की है। वह यह है कि जब तक उसको मकरंद का रस नहीं आता, तभी तक वह गुंजार करता है, ज्योंही उसे मकरंद मिलना शुरू हो जाता है कि उसकी आवाज भी बंद हो जाती है। तब तो वह अपना स्वर भी भूलकर रस पान में निमग्न हो जाता है। इसको हम आत्मा के सम्बन्ध में समझें। भंवरे के रूपक द्वारा संकेत मिल रहा है कि जब तक साधना में रस नहीं आता, तभी तक मन बाहर के पदार्थों में दौड़ लगाता है। जब अन्तर्मन का अद्भुत आनंद मिलने लगता है- उसका रसास्वादन होने लगता है, तब बाहर के भौतिक पदार्थों के प्रति अरुचि स्वयमेव होती जाती है। हमारा मन भी मधुकर है। जब ब्रह्म के साक्ष्य को अनुभव कर लेता है - जब आत्मदरस की प्रतीति हो जाती है, उस समय वह बाहरी दौड़धूप बंद कर देता है। शर्त केवल यही है कि हमें वह आनंद लेना आना चाहिए। वह रस लेना आता नहीं इसी से 50 - 60 वर्ष तक साधना करने पर भी मन स्थिर नहीं रहता। इसे रस दूसरे पदार्थों में आता है, साधना में नहीं आता। आपको बाहर के तत्वों में तो बड़ा आनंद आता है। नोटों की गड्डी गिनने बैठो तो मन कहीं और जाएगा? उस समय तो सारी एकाग्रता उसी में लगी रहेगी।

तब मन कहीं नहीं भटकेगा, क्योंकि उसमें आपका भाव जुड़ा है। उस गिनती में रस आ रहा है। नोटों में अन्तरंग श्रद्धा जुड़ी है, अतः मन वहीं का वहीं रहता है। मालाफेरो तो? वहाँ तो मन भटके! कहा है -

माला तो कर में फिरे, मन फिरे चहुँ ओर।
मन बिसयों में दौड़ता, किम ले मुक्ति छोर।।

माला हाथ में घूम रही है और मन कहां है? मन चारों ओर परिभ्रमण कर रहा है. क्यों जी वहां मन क्यों भागता है? नोटों को गिनते समय क्यों नहीं भागता? वही मन हिसाब – किताब करने में एकाग्र रहता है और सामायिक में नहीं रहता, क्योंकि उसके प्रति अन्तरंग की श्रद्धा नहीं है। निरन्तर बाह्य पदार्थों के प्रति दौड़ लगी रहती है, जबकि वास्तविकता यह है कि धन ने कभी किसी को सुखी नहीं किया। सांसारिक पदार्थ कुछ देर की संतुष्टि अवश्य दे देते हैं। मात्र सुखाभास मिल जाता है उनमें सच्ची शांति कभी नहीं मिलती। मान लो कोई करोड़पति है। अपने धनवान् होने का- करोड़पति होने का गर्व है उसको। बस, उतना – सा सुख उसको धन दे देगा। इसके अलावा और कोई सुख नहीं दे सकता। धन के द्वारा आन्तरिक सुख- शांति उपलब्ध नहीं हो सकती। आध्यात्मिक सुख के समक्ष शरीर की सुख - सुविधाएं नगण्य है। उनकी कोई वैल्यू नहीं। कोई व्यक्ति बाहर से संक्लेशित दिखाई दे रहा हो, वह अदंर में आनंद का अनुभव करने वाला भी हो सकता है। इसके विपरीत एक व्यक्ति अंतरंग में बहुत दुःखी हो, लेकिन बाहर से वह सुखी दिखाई दे, यह भी संभव है। बाहर से उसका हंसता हुआ चेहरा देखकर सब लोग उस व्यक्ति को बड़ा सुखी समझेंगे। जितना वह

चेहरे से खुश लगेगा, हो सकता है कि भीतर में उतना ही पीड़ित, संक्लेशित हो, क्योंकि असलियत छिपाने को प्रसन्नता का मुखौटा लगा लिया जाता है। आप किसी को हंसते देंखे तो यह न समझें कि वह सुखी है। अंदर की वेदना छिपाने को लोग हंस लेते हैं। अपने को और दूसरों को धोखा दे लेते हैं। वास्तविकता यह है कि इस संसार में कोई सुखी नहीं है। केवल वही सुखी हो सकता है जो अपनी आत्मा में रमण करता हो। जितने भी सुख - साधन जगत् में दिखाई देते हैं, वे सुखाभास हैं, क्षणिक सुख देकर महान् दुःखों की सृष्टि उनके द्वारा होती है। धन हो तो उसकी कल्पना का क्षण भर का सुख है, बाकी तो निरंतर संक्लेश ही है। पैसा है तो उसकी सुरक्षा की चिन्ता भी रहती है। इसी से पैसे के लिए नीतिकारों ने कहा है :-

अर्जने दुःखं रक्षणे दुःखं, व्यये दुःखं सर्वात्मना

पहले तो धन को कमाने में ही कष्ट होता है। बड़े यत्न से पैसा कमाया जाता है। अर्जन करने के बाद धन को संभालकर रखने की समस्या खड़ी हो जाती है। रात - दिन उसकी सुरक्षा का विचार परेशान करता है। घर में रखें या बैंक में रखें यह भी विचारणीय होता है। यदि घर में रखें तो चोरों का डर। यदि बैंक में रखें तो भी कई तरह के झंझट। वक्त पर तत्काल ज़रूरत होने पर यदि बैंक से न निकल सके तो भी परेशानी! खर्च होता है तब भी दुःख होता है। पैसा हाथ से जाता है तो बड़ी पीड़ा होती है। धन को कमाने में दुःख, खर्च करने में दुःख, सुरक्षित रखने में दुःख और बचाने के लिए भी सोच - विचार करना जरूरी! उसके पीछे भाव यह होता है कि बुढ़ापे में काम आयेगा। पैसा

होने पर भी बचत करने के भाव में खर्च नहीं करते। कंजूसी करते हैं कष्ट उठाते रहते हैं, मगर खर्च करना मंजूर नहीं। बहुत उदाहरण हमने ऐसे देखें हैं जो कंजूसी की सीमा से बढ़कर लगते हैं। चमड़ी जाए पर दमड़ी न जाए वाली बात है।

कंजूसी की हद :

एक व्यक्ति साकार उपासना करने वाला - वह सुबह - सुबह उठ कर परमात्मा की तस्वीर के सामने अगरबत्ती जलाया करता था। दीपक भी जलाता - भगवान् की आरती उतारता। दो तीन बार आरती उतार कर दीपक और अगरबत्ती बुझा देता था। उसे यह चिन्ता रहती थी कि कहीं व्यर्थ का खर्च न हो जाए। दीपक को तुरन्त बुझा देता था। एक दिन भगवान् की उपासना - पूजा करके वह जल्दी में चला गया। उसे कहीं जाना था। लगभग आधा कि.मी. जाने के बाद उसे याद आया - "ओहो, आज मैं दीपक और अगरबत्ती बुझाना भूल गया हूं। यह तो बड़ा नुकसान हो गया। पत्नी से भी नहीं कहा, वरना वही बुझा देती। इतना निरर्थक खर्चा हो जाएगा।" आवश्यक काम से जाना था, लेकिन वह तो उसने कैंसिल कर दिया और उल्टे पैरों लौट आया घर को। घर के बाहर से ही पत्नी को आवाज लगाई। वह अंदर से बोली - "क्या है? तुम वापस क्यों आए?" वह पुकार कर बोला - "दरवाजा खोल, एक जरूरी बात कहनी है।" पत्नी जवाब देती है - "बात क्या है? पहले बात बताओ तब दरवाजा खोलूंगी। यदि कोई आवश्यक बात न हुई तो दरवाजे की कीली को व्यर्थ घिसाने से क्या लाभ है? तुम तो काम बताओ पहले, तब दरवाजा खोलूंगी।" वह व्यक्ति कहता है - "अरी भाग्यवान्, मैं भगवान् की पूजा

करने के बाद दीपक और अगरबत्ती बुझाना भूल गया। कितना व्यर्थ का खर्चा हो गया होगा, यही चिन्ता मुझे खाए जा रही है। उसी बेचैनी से मैं रास्ते से वापस आया हूं।'' पत्नी ने कहा - ''तुम मुझे क्या इतनी मूर्ख समझते हो! आखिर मैं तुम्हारी पत्नी हूं। तुम्हारे जाने के बाद मैंने दीपक बुझा दिया था और अगरबत्ती भी संभालकर कल के लिए सुरक्षित रख दी थी। मैंने भी व्यर्थ नहीं जलने दिया, इतना ख्याल रखा लेकिन तुम इतनी दूर दौड़कर आए हो तो जूते घिस गए होंगे। यह नुकसान तुमने किया है। साधारण चलने की अपेक्षा दौड़ने में जूते अधिक घिसते हैं। तुम ने जूतों का ध्यान नहीं रखा होगा।'' सेठ ने जोर से कहा - ''मैं क्या ऐसी गलती कर सकता था? यह देखो, मैंने जूते पहले से ही उताकर बगल में दबा लिए हैं।''

देखा आपने? किस प्रकार एक-एक पैसा बचाया जाता है? सोचिए, कितनी सुरक्षा! घी की भी, कीली की भी और जूतों की भी। ऐसी सुरक्षा रखते हैं आप भी? नहीं रखते? रखने वाले? रखते भी हैं बंधुओं! पैसों के पीछे जान देते हैं। मान - सम्मान - स्नेह - सबको धन के पीछे नेग्लेक्ट कर दिया जाता है। मम्मन सेठ की कहानी सुन रखी है न आपने? प्रभु महावीर के समय में वह मम्मन था। आजकल भी मम्मन है बहुत से आधुनिक मम्मन हैं। उनमें से एक की बात बता दूँ। झालावाड़ जिले का वह आधुनिक मम्मन था। एक गांव में रहा करता था। लगभग 50,000 की आबादी वाला गांव होगा, उसी में वह रहता था। उसके माँ-बाप मर गए थे, शादी की नहीं - सो अकेला ही रहता था। जब शादी नहीं की तो बच्चों का भी सवाल खत्म। थोड़ा - बहुत धन माँ-बाप छोड़ गए थे,

बस वही उसका सहारा था। सबसे बड़ी उसकी विशेषता यह थी कि वह एक नम्बर का आलसी और कामचोर था। काम - काज करना उसे जरा भी पसंद नहीं था। दूसरी विशेषता उसमें यह थी कि उसकी बुद्धि मंद चलने की शौकीन थी यानि बुद्धि का कमजोर था। तीसरी बात यह थी कि एक भी पैसा खर्च करता तो उसकी जान निकलती थी। हद दर्जे का कंजूस भी था। अपने भोजन के लिए भी वह एक पैसा खर्च करना पाप समझता था। जहाँ कहीं जीमण होता वहीं पहुँच जाता। कोई बुलाए या न बुलाए, वह तो बिना बुलाया मेहमान बनकर चला जाता था। अगर उसे कोई धक्के भी दे तब भी ढीठ बनकर बैठा रहता। भोजन करके ही हटता। उसकी यही आदत बन चुकी थी। जब उसका हाल यही रहा, तो लोगों ने उसे भोजन देना शुरू कर दिया। लोग सोचते कि हम खाते हैं तो दो रोटी इसे भी दे दें, क्या अन्तर पड़ता है। इस प्रकार से उसकी ोज की समस्या हल हो गई। कपड़ा भी ऐसे ही मिल जाता था, वरना फटे-चीथड़े लटकाए रहता। इतने पर भी उसे संतोष नहीं था। रास्ते में बैठ कर भीख माँगता था। पैसे जोड़ता था। खर्च तो एक भी पैसा करना नहीं पड़ता था, जो भी मिल जाता, वह जमा कर लेता था। उसने खूब जोड़ा - खूब धन इकट्ठा किया। ऐसा करते-करते 46 वर्ष बीत गए। इतने वर्षों में न उसने कोई वस्तु खरीदी, न कभी कुछ दान दिया। भीख माँगकर धन जोड़ता - पंगत में बैठ कर खा लेता। जो भी मिले वह खा ले- जूठन भी खा ले। इस प्रकार वह बीमार पड़ गया। अनेक रोगों ने उसे घेर लिया। अब क्या करे? डॉक्टर को दिखाए तो फीस माँगे! फीस देना उसकी शान के विरूद्ध थी ऐसी बात नहीं कि उसके पास

फीस देने को नहीं थी। उसके पास खूब धन था, लेकिन 'चमड़ी जाए पर दमड़ी न जाए' वाली बात थी। जिस व्यक्ति ने अपने खाने के लिए जीवन-भर एक पैसा न खर्चा हो, वह डॉक्टर को फीस किस प्रकार दे सकता है? वह डॉक्टर के पास नहीं गया। शरीर में पीड़ा बढ़ती गई। वह तड़पता रहता - वेदना सहन करता रहता भोगता रहता लेकिन दवाई लेना उसे मंजूर नहीं था। कुछ दिन उसने कर्म के अनुसार वेदना भोगी और एक दिन उसकी इहलीला समाप्त हो गई। उसके बाद भी वह तीन दिन तक सड़ता रहा। बदबू फैलने लगी तो गाँव वालों ने नगरपालिका को सूचना दे दी। पुलिस आई और उसकी झोंपड़ी का दरवाजा तोड़कर देखा गया। शव एकदम क्षत्-विक्षत् हो रहा था। कहीं - कहीं से बिल्ली ने माँस नोच रखा था। जगह -जगह से कीड़ियों ने खा लिया था। बड़ी मुश्किल से उसके शव को बाहर लाया गया। मिट्टी का तेल, पैट्रोल छिड़क कर उसका दाह संस्कार किया। बाद में उसकी झोपड़ी की तलाशी ली गई। वहाँ एक टूटी-फूटी पेटी मिली। उसमें चीथड़े भरे थे नया कपड़ा तो कभी उसने बनवाया ही नहीं तो होता कहाँ से? फटे-पुराने कपड़ों के नीचे नोटो के बंडल थे। 60,000 रुपये के नोट वहाँ मिले! कितने? उस समय के 60,000 (साठ हजार) कितने होंगे, सोचिए आप! एक रुपया दवा के लिए खर्च न कर सका। बीमारी में ही मर गया। पुलिस ने वे 60,000 रुपये ले लिए। कानूनी कार्यवाही की गई। बहुत जाँच करने पर पता लगा कि उसके दूर के रिश्ते की बहन पास के गाँव में रहती है। उसको बुलाया गया, पूछा - ''तुम्हारा कोई भाई है,'' उसने उत्तर दिया - हाँ, भाई तो अवश्य है, लेकिन बहुत वर्षों से उसका कुछ पता नहीं।'' पुलिस

ने वे रुपये उसको दिए, कहा - ''ये रुपये तुम्हारा भाई छोड़कर मरा है। इन्हें सम्भालों।'' वह नहीं लेती। बोली - ''मुझे नहीं लेने हैं ये रुपये! भीख माँग-माँगकर इकट्ठे किए गए ये रुपये और मरते हुए भी दवाई न करने की हद तक कंजूसी करके जोड़े हुए ये रुपये मेरे परिवार को बर्बाद कर देंगे! मैं नहीं लूँगी इन्हें।'' उन रुपयों को फिर सरकारी कोष में जमा कर दिया गया।

मैं बात यह कह रहा हूँ कि इस प्रकार के कंजूस व्यक्ति भी होते हैं उन्हें हम आधुनिक मम्मन कह सकते हैं। वे न तो खुद खाते हैं न कभी एक रुपया खर्च करते हैं। देखो आप, जीवन भर ठीक से खाया नहीं। लोगों के टुकड़ों पर जीवित रहा। बीमार हुआ तो उपचार भी नहीं कराया। भीख माँग कर बड़े कष्ट से वे रुपये उसने जोड़े, लेकिन उसके क्या काम आए? इसी से कहा गया है कि धन के अर्जन, रक्षण, व्यय और बचत सभी में दुःख ही दुःख भरा है।

समझदार किसान :

वर्षों पर वर्ष बीत जाते हैं भौतिकता में सुख खोजते हुए, किन्तु मिलता है क्या? बाहरी पदार्थों में सुख है ही नहीं तो मिलेगा कहाँ से, लेकिन फिर भी समझ आती है क्या? एक किसान अपने खेत में बीज बोएं। एक साल - दो साल - दस साल हो जाएँ बीज बोता ही रहे, लेकिन फसल नहीं हो तो वह क्या सोचेगा? यही मान लेगा कि मेरे खेत की भूमि ऊसर है - बंजर है। इसमें मैं हर बार बीज बो देता हूँ मगर फसल नहीं ले पाता। आपकी क्या स्थिति है? कितने वर्ष हो गए धर्म और ज्ञान के बीज बोते-बोते? 60 - 70 वर्ष तक फसल नहीं मिलने पर भी आप

कुछ सोच नहीं पाते कि इसका कारण क्या है? वह किसान सोच लेगा - "जब इतने वर्ष तक फसल नहीं हुई तब क्या करना? चलो छोड़ो यह जमीन ही खराब है। दूसरी जमीन पर खेती करनी चाहिए।" वह समझदार किसान भूमि बदल लेगा, लेकिन आप लोग क्या कर रहे हो? कभी विचार आया कि यह रास्ता ही गलत है, दूसरा रास्ता अपना लें। अरे, 60 वर्ष 80 वर्ष खो दिए - सच्चा आनंद नहीं मिल सका। अब तो जागृति आनी चाहिए। बन्धुओं, बहुत सूक्ष्म दृष्टि से विचारणीय प्रश्न है यह। निरर्थक कल्पनाओं में जीते रहने से क्या आनंद प्राप्त हो जाएगा? शेखचिल्ली का किस्सा सुना है? उसी शेखचिल्ली की तरह एक सेठ-सेठानी थे।

कल्पनाओं के महल:

किसी शहर में एक सेठ-सेठानी थे। एक दिन बातों ही बातों में उनमें लड़ाई हो गई। हुआ यों कि सेठ बोला - " मोल के दूध में तो मजा नहीं आता। एक भैंस लानी चाहिए, ताकि घर का शुद्ध दूध पीने को मिल सके।" सेठानी ने कहा - " तुम्हारी बात बिल्कुल ठीक है। भैंस ले आओ, मैं उसकी सार-संभाल कर लूँगी। उसकी खूब सेवा करूँगी।" सेठ बोला - "ठीक रहेगा, मैं आज ही भैंस खरीदकर ले आता हूँ। शुद्ध दूध मिलेगा। घर के दूध पर बड़ी अच्छी मलाई आएगी। मलाई-मलाई में खाऊँगा।" यह सुनते ही पत्नी भड़क कर बोली - "वाह जी वाह, तुम सारी मलाई कैसे खा लोगे? मेरा भी तो उस पर अधिकार होगा। श्रम में करूँगी, दूध मैं दूहूँगी। चारा-पानी भैंस का मैं करूँगी और मलाई तुम खा जाओ, यह नहीं हो सकता। सेठ गुस्से में

बोला – "तू ज्यादा मत बोल! मैंने कह दिया न कि मलाई में खाऊँगा।" सेठानी भी तमतमाई – "देखो जी, तुम्हें यदि मलाई खानी ही है तो बाजार से खरीदकर खाना। भैंस के दूध की मलाई तो मैं खाऊँगी। आखिर सारी मेहनत तो मैं ही करूँगी? मलाई क्यों न मैं खाऊँ भला?" सेठ ने कहा – " भैंस तो मैं ही लाऊँगा न। मलाई मैं खाऊँगा, तू छाछ पी लेना।" सेठानी चिल्लाई – "वाह, क्यों पीऊँ मैं छाछ? मैं तो मलाई खाऊँगी।" बात बढ़ गई। दोनों तेज-तेज बोलने लगे। एक समझदार पड़ौसी आया। उसने पूछा – "क्या हुआ भाई? क्यों लड़ रहे हो?" सेठ ने और सेठानी ने बात बताई। वहाँ तो मलाई का झगड़ा था। बंधुओं, न जाने कितनी तरह के झगड़े संसार में होते हैं। जरा-जरा सी बातों पर संघर्ष खड़े हो जाते हैं। नहीं होते? वहाँ मलाई पर लड़ाई हो गई। पति-पत्नी दोनों की बात सुनकर व्यक्ति मन ही मन खूब हँसा। वहाँ पास ही एक डंडा पड़ा था। उसने वह डंडा उठाया। सेठ के एक डंडा [illegible]। सेठ बोला– "मुझे क्यों मारा तूने?" वह कहता है – "तेरी भैंस मेरा खेत खा गई अब मारूँ नहीं तो क्या करूँ?" सेठ बोला – "मेरी भैंस कहाँ है? अभी तो मैं खरीदकर लाया ही नहीं, भैंस कहाँ से आई? तेरा खेत कैसे खा लिया?" तब वह व्यक्ति बोला – "अरे भले मानस, जब भैंस नहीं है तो मलाई कहाँ से आ गई? मलाई के पीछे तुम दोनों लड़ रहे हो, वह लड़ाई किसलिए?" वन्धुओं, ये मंसूबे ही तो व्यर्थ के विवाद खड़े कर देते हैं। कहावत भी है–

मारवाड़ मन्सूबे डूबी।

'हम यह कर लेंगे' – 'हम वह कर लेंगे' सारी जिंदगी इन्हीं बातों में गुजार देते हो, लेकिन मन्सूबे पूरे नहीं होते हैं– 'बेटा बड़ा होगा,

डॉक्टर - इंजीनियर बनायेंगे।' जरा सोचो कब बड़ा होगा कब बनाओगे। बनेगा भी या नहीं यह कौन जानता है। अपना मन्सूबा बना लेते हैं और कुछ विचार नहीं करते। इस प्रकार के भौतिक संकल्प जोड़ते रहते हो। रात-दिन इन्हीं संकल्पों में लगे रहते हो। इसे निरर्थक बातें कहते हैं। अनर्था दंड कहते हैं। इस रूप में हम बाहर में सुख खोजते हैं। हमारी चेतना में अनंत भंडार है, जिसकी कोई तुलना भौतिक पदार्थों से नहीं हो सकती लेकिन आत्मा की ओर दृष्टि जाए तब न? दृष्टि तो केवल बाहर टिकी हैं, उसके कारण बहुमुखी अनंत आत्मिक शक्ति को भूले हुए हैं। सारी जीवनी शक्ति यूँ ही गँवा देते हैं। ज्ञानीजन बार-बार सावचेत करते हैं। धन्ना जी श्रावक की बात पता है न? कितने वचन सुने उन्होंने? अप्रत्यक्ष रूप से पत्नी ने कायर कहा था? वह भी उनको सीधे-से कायर नहीं कहा था, यही कहा था कि 'कथनी और करनी' एक समान नहीं होती। धन्ना जी को स्नान कराते समय जब उसके आँसू धन्ना जी की पीठ पर गिरे, तब उन्होंने चौंक कर ऊपर देखा। उनकी पत्नी रो रही थी। कारण पूछने पर वह बोली- " मेरा भाई शालिभद्र आज से बत्तीसवें दिन दीक्षा ले लेगा। इसी कारण से मैं दुःखी हो रही हूँ।" तब धन्ना जी ने कहा - " तेरा भाई तो कायर है प्रतिदिन एक पत्नी को संयम के लिए मनाएगा और 32 पत्नियों को राजी करते हुए बत्तीस दिन बिताएगा। शूरवीर तो क्षण-भर में संयम ग्रहण कर लेते हैं।" उनकी पत्नी को यह बात बहुत चुभी। वह बोली - " प्राणनाथ, कहना और करना एक सरीखा नहीं होता। संयम लेना कोई आसान काम नहीं है। इतने वैभव को छोड़ना हँसी-खेल नहीं है।" उसने तो सामान्य रूप में यह बात कही थी, लेकिन

धन्ना जी ने क्या समझा? उन्होंने यह मान लिया कि यह व्यंग्य इसने मुझ पर किया है। अपने को परोक्ष रूप में भी कायर कहलाना उन्हें ठीक नहीं लगा। उन्होंने क्या कहा - "शूरवीर जो कहते हैं उसे पूरा भी करते हैं। मैं तो ये चला संयम लेने।" पत्नी बहुत क्षमा माँगती, रोकती रही लेकिन वे क्या रूके? एक शब्द कितना गहरे तक झकझोर गया! जाग उठे। आप रोज बोलते हो, -क्या बोलते हो?

कायर तो कटरा में फंसिया, सूरा पार उतरसीरे।

अपने आपको रोज कायर कहते हो। कहते भी जाते हो, फँसते भी जाते हो। 60 -70 वर्ष बीत गए फँसते हुए और गलती दोहराते हुए, लेकिन फिर भी सावधानी नहीं हुई राग - भाव के कीचड़ में फँसते ही जाते हो। किसी भी वस्तु में या व्यक्ति में यदि राग - भाव रह जाए तो एक जन्म नहीं अनेकों जन्म बिगड़ जाते हैं। मन यदि तिजोरी में रमता तो मृत्यु के बाद चूहे बनकर तिजोरी के चक्कर लगाने पड़ते हैं। एक जन्म में गति बिगड़ी तो फिर कई जन्म खराब हो गए और एक जन्म में यदि अनासक्ति भाव का जागरण आ गया तो मोक्ष की भूमिका बन जाती है। यदि भीतर में विशुद्ध श्रद्धा का जागरण हो जाए, तो भवभ्रमण की गति में एकदम परिवर्तन आएगा। संसार की दौड़ बंद होगी। बाहर की दौड़ बंद होकर अंदर की चालू हो जाएगी। आप बाहर की ओर दौड़ रहे हो कि नहीं? उसी को सुख का माध्यम समझ लिया है। जब अन्तर की ओर दृष्टि मुड़ेगी तो ज्ञात होगा कि बाहर की दौड़ आनन्द देने वाली नहीं है। आप सुबह से दौड़ना शुरू करते हो। सौभाग्य मल जी, सुबह कितने बजे उठे? साढ़े पांच बजे। कहां - कहां की दौड़ लगाई? नीमच

की - मंदसौर की। अब आप देखिए, उठे और बाहर में दौड़ने लगे। उधर तो इतनी जल्दी उठ कर दौड़े और यहां सामायिक करने को कहो तो? गाड़ी यदि चार की बजाय तीन बजे भी जाती होती तो उठ जाते। साधना के लिए कितनी उत्सुकता है? बाहरी दौड़ के लिए तैयारी कर लेते हो, किन्तु साधना के लिए कितनी तैयारी होती है? जन्म - जन्म तक बाह्य दौड़ में भटकते आ रहे हैं। इसी से प्रभु ने जागरण का संदेश दिया है। गौतम को कितनी वार उद्‌बोधन दिया - ''समयं गोयं मा पमायए।' हे गौतम, क्षण मात्र का भी प्रमाद मत करो। गौतम क्या प्रमाद करते थे? चौदह पूर्वों के ज्ञाता थे वे! क्या वे साधारण व्यक्ति की तरह प्रमाद में जाते थे? प्रभु महावीर ने गौतम के माध्यम से सभी प्राणियों को उद्‌बोधन दिया है। गौतम तो केवल निमित्त रूप में रहे हुए हैं। उन्हें तो मात्र प्रतीक बनाया है। आप जाते हो प्रमाद में कि नहीं? प्रमाद के कितने भेद है? केवल आलस्य को ही प्रमाद नहीं कहते। शास्त्रकारों ने 5 प्रकार का प्रमाद बताया है। कौनसे 5 प्रकार?

मद, विषय, कषाय, निद्रा और विकथा।

मद यानि मोहभाव, रागभाव और विषय - कषाय आपके भौतिक क्रिया -कलाप, निद्रा और विकथा। ये सभी प्रमाद के प्रकार हैं। इन सभी में तो लगे रहते हो और किसमें लगते हो? सारा जीवन इन्हीं में चला जाता है? भगवान् ने तो क्षण भर भी प्रमाद न करने का उपदेश दिया है और यह जीवन भर प्रमाद हो रहा है। आपने इतना जीवन विता दिया। कभी विचार आया? उसी लीक पर चले जा रहे हो। समय कितना हो गया? अरे, घड़ी की ओर ध्यान ही नहीं गया मेरा! अभी शास्त्रीय विषय भी लेना है।

सुख विपाक सूत्र का वर्णन :

सुख विपाक सूत्र का वर्णन चल रहा है। कल मैं बता गया था कि सामान्यत: किन कारणों से झूठ बोला जाता है। झूठ में क्या- क्या विशेष हेतु उत्तरदायी होते हैं? सत्यव्रत के अतिचार कौने हैं? सहस्स भक्खाणे, रहस्सभक्खाणे, सदार मन्तभेए, मोसोवएसे और कूडलेह करणे। रोज प्रतिक्रमण में बोलते हो न? अतिचार क्या होते हैं? जिनसे व्रत में दोष लगे वह अतिचार। दूसरे व्रत के सत्यव्रत के पांच अतिचार हैं। पहला 'सहस्सभक्खाणे का अर्थ है किसी भी व्यक्ति पर सहसा आख्यान - दोषारोपण कर देना। झूठा आरोप लगा देना। 'रहस्सभक्खाणे' - इसका मतलब है कि यदि दो व्यक्ति समझ लो भाई - वहन कुछ बात कर रहे हैं। लोगों की दृष्टि क्या बनेगी? यही सोचेंगे कि न जाने कैसी बात कर रहे हैं। उनके विषय में चर्चा करना - उन पर आरोप लगाना। इसी तरह 'रहस्सभक्खाणे' सत्यव्रत का अतिचार है। उसमें क्या बताया? कोई दो व्यक्ति बात कर रहे हो - कोई रहस्यमय बात हो रही है। पहले अतिचार में बिना सोचे - समझे किसी पर आरोप लगाना और दूसरे अतिचार में उन पर शंका करना। मनोनुकूल कल्पनाएँ करके उन पर दोष लगाना। तीसरे अतिचार में अपनी स्त्री के या पुरुष के मर्म यानि गुप्त रहस्यों को प्रकट करना। रहस्यमय बात को प्रकट करने से कई प्रकार के अनर्थों की संभावना भी हो सकती है। यह भी एक अतिचार है। इससे बचना चाहिए। इससे कई संक्लेश पैदा हो सकते हैं। चौथा अतिचार है - मिथ्या उपदेश। मिथ्या उपदेश की आजकल बहुत प्रवृति हो गई है लेना - देना कुछ नहीं मगर जबरदस्ती राय देना भी इसी के अन्तर्ग

आता है। प्रकट में तो असत्यकारी नहीं लगता लेकिन परोक्ष रूप में भाव असत्य के होते हैं। किसी ने यदि सिरदर्द की या पेट - गैस की शिकायत बताई तो झट से दूसरा कह देगा - ''मेरे भी यही बीमारी थी, लेकिन जब से सिगरेट पीनी शुरू कर दी, तब से मेरी पेट गैस खुद ठीक हो गई।'' अब यह क्या है - आप सोचो। आप उस व्यक्ति को बीड़ी - सिगरेट पीने का परामर्श प्रकारान्तर से दे रहे हो। नहीं दे रहे हो? मेरे ठीक हो गई, तुम पियो तो तुम भी ठीक हो जाओगे - यही भाव तो है! यह भी मिथ्या उपदेश है। ऐसी और भी बातें हो सकती है। किसी को गलत रास्ते पर जाने की सीख देना - प्रतिकूल परामर्श देना - यह सब 'मोसोवएसे' के अन्तर्गत है। अन्त में है 'कूडलेह करणे' अर्थात् झूठा लेख लिखना। यह तो आज कल मामूली बात हो गई है। आप रोज क्या करते हो? झूठा लेखा - जोखा नहीं करते हो? लोग कहते हैं - ''महाराज साहब, झूठ न लिखें तो क्या करे? पेट कैसे भरे। बन्धुओं, पेट तो एक मजदूर भी भरता है, लेकिन आपको तो पेटी भरनी है - तिजोरियाँ भरनी है। मजदूर मस्ती से रूखी - सूखी खा कर पेट भर लेता है। आप केवल पेट भरने - मात्र से संतुष्ट नहीं हो पाते इसी से झूठ का धन्धा करना पड़ता है। कुछ लोग ब्याज पर रुपया उधार देते हैं। ग्राहकों को रुपया देने से पूर्व ही ब्याज काट लेते हैं। बाद में भी कुछ लोग ब्याज बढ़ा देते हैं। यह सब सत्य के अतिचार हैं। श्रावक को इन अतिचारों से बचने के लिए प्रभु महावीर ने संकेत किए हैं। प्राणी मात्र के लिए नहीं कह सकते क्योंकि प्राणीमात्र तो ये सब करता ही नहीं है। पशु कैसे करेगा? यह असत्याचरण का कार्य किसका है? मानव का

ही है। पशु बेचारे झूठा व्यवहार नहीं करते। वे सहज होते हैं। छल - कपट और झूठ बोलना किसके जिम्मे बताया? मनुष्य ही सारा दुराचार और असत्यभाषण करता है। प्रभु ने सबके लिए व्रत पालन बताया। यदि सभी सत्य का आचारण करने लगे तो क्या हो? धरती पर स्वर्ग बनते देर न लगे। चारों और सत्य की प्रतिष्ठा हो जाए। कहीं भी असत्य का नाम न हो। सत्य की बहुत महत्ता होती है। सत्यव्रत का विश्लेषण करने में तो बहुत समय चाहिए। अब घड़ी की स्थिति और आवाज को देखते हुए आज का विषय यही तक रखने की आवश्यकता है, अतः अपने आज के वक्तव्य को यही विराम देता हूं......

19 अक्टूबर, 1989

संसार के अनन्त चक्र में भटकती आत्माओं को अपने अन्तर में छिपी अपार निधि का ज्ञान नहीं है, इसी से वे दुःखों के गहरे सागर में नित्यप्रति गोते लगाती रहती हैं। जो कुछ बोध है, वह ना कुछ तत्वों का है। आत्मा की शक्ति को जानने के अभाव में वह आदरणीय तत्वों को उपेक्षणीय कर देता है। जिसको सच्चे हीरों की पहचान न हो वह हीरे को क्या समझे? हीरे की शेप के रंग-विरंगे कांच के या प्लास्टिक के टुकडों को ही वह हीरा मान लेगा। एक तरफ यदि वे रंग - बिरंगे कांच के टुकडें रख दिए जाएं और एक और असली हीरा रख दें तो वह कांच के टुकडों को ही हीरा मानकर उठा लेगा, क्योंकि वे भी हीरों की तरह चमकते हुए दिखाई देते हैं। उसके लिए मूल्य चमक का है, आब का नहीं, ऊपरी चकाचौंध का है, आन्तरिक तेजस्विता का नहीं। 7यही दशा मोहग्रस्त मानव की है।